इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-12
Hkkjrh; dgkuh

खंड

3

ejkBh] dkd.k] x|t jkrh vkj jk t LFkkuh Hkk"kk dh dgkfu;k

bdkbl 8
^^fonkg** % fo'y"k.k vkj eY;kdu 5

bdkbl 9
vk·j p#xu ej---- % fo'y"k.k vkj eY;kdu 17

bdkbl 10
fprk % fo'y"k.k vkj eY;kdu 28

bdkbl 11
^^ntk dchj** % fo'y"k.k vkj eY;kdu 38

ikB;Øe fo'k"kK lfefr

प्रो. दिलीप सिंह
कुलसचिव
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
चेन्नई

प्रो. एम. षणमुखन
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर (हिन्दी)
विज्ञान और तकनीकी विश्वविद्यालय
कोचिन

प्रो. तेजस्वनी कट्टिमणि
कुलपति
इन्दिरा गांधी जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक

प्रो. शम्भुनाथ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर (हिन्दी)
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

प्रो. नवनीत चौहान
हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय
बल्लभ विद्यानगर, आणन्द

ldk; lnL;

प्रो. जवरीमल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(*पाठ्यक्रम संयोजक*)

ikB;Øe la;kstd

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

[kM la;kstu] la'kks/ku ,oa laiknu

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

ikB;Øe fuekZ.k lfefr

ikB ys[kd	bdkbZ la-
डॉ. प्रमोद कुमार अंग्रेजी संकाय मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	8
प्रो. अरुण होता प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, पश्चिम बंग राज्य विश्वविद्यालय, बारासात (कोलकाता)	9
प्रो. आलोक गुप्ता प्रोफेसर एवं डीन, गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर	10
प्रो. गोपाल प्रधान हिन्दी विभाग अंबेडकर विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	11

fo'k"k lg;kx
डॉ. नमिता सत्येन
डॉ. हरेश परमार
सुश्री भावना सरोहा

lfpoky;h lg;kx
श्री नवल कुमार

lkexzh fuekZ.k

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

फरवरी, 2017

©*bfnjk xka/kh jk"Vªh; eqDr fo'ofo|ky;] 2017*

ISBN-978-93-86375-79-7

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में अधिक जानकारी के लिए विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली-110068 से सम्पर्क करें।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सत्यकाम, निदेशक मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

ystj VkbZi lsfVax % टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

eqnzd %

[k.M 3 ifjp;

यह कहानी संबंधी माड्यूल के चौथे पाठ्यक्रम 'भारतीय कहानी' का तीसरा खण्ड है। इस खण्ड में कुल चार इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं–

bdkb 8 ''विद्रोह'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

bdkb 9 ओऽरे चुरुंगन मेरे.... : विश्लेषण और मूल्यांकन

bdkb 10 चिता : विश्लेषण और मूल्यांकन

bdkb 11 ''दूजौ कबीर'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इस खण्ड में विद्रोह (मराठी), ओऽरे, चुरुंगन मेरे (कोंकणी), चिता (गुजराती) और दूजौ कबीर (राजस्थानी) जैसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस खण्ड को पढ़ने के पश्चात् आप बाबूराव बागुल, मीना काकोडकर, रघुवीर चौधरी और विजयदान देथा जैसे महत्त्वपूर्ण भारतीय कहानीकारों की कहानीकला से भी परिचित होंगे/होंगी।

हमें विश्वास है, इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय कहानी के विस्तृत परिसर से परिचित को सकेंगे/सकेंगी। इस खण्ड में शामिल कहानियाँ इन लेखकों की सर्वकालिक महान कहानियाँ हैं। इसी प्रकार इस खण्ड में शामिल कहानियों को पढ़ते हुए मन और विवेक पर उनका गहरा असर पड़ता है।

इस खण्ड को पढ़ते हुए आप इसमें शामिल कहानीकारों के रचना संसार का भी संक्षिप्त परिचय पा सकेंगी/सकेंगे। इन कहानियों के विश्लेषण से गुजरते हुए आप देखेंगे/देखेंगी कि किसी कहानी की श्रेष्ठता के निर्धारण में उसकी कथावस्तु के साथ-साथ उसके रूप पक्ष का भी बड़ा योगदान होता है। इस पाठ्यक्रम के चौथे खण्ड में भी आप चार कहानियों का अध्ययन करेंगे/करेंगी।

शुभकामनाओं सहित।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

bdkbl 8 Þfoæ¨gÞ % fo'y"k.k v©j eY;kdu

bdkÃ dh :ij[kk

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 दलित साहित्य में बाबूराव बागुल जी का स्थान

8.3 बाबूराव बागुल : जीवनवृत्त और लेखन परिचय

8.4 बाबूराव बागुल : साहित्यिक विचार और लेखन धर्मिता

8.5 विद्रोह कहानी की कथावस्तु

8.6 विद्रोह : भाषा शैली

8.7 विद्रोह : आलोचना एवं विश्लेषण

8.8 दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र

8.9 सारांश

8.10 अभ्यास

8-0 mís';

मराठी भाषा में, दलित साहित्य का उदय, गौतम बुद्ध, महात्मा फुले और डॉ. अम्बेडकर के विचार दर्शन एवं आंदोलनों के परिणाम स्वरूप हुआ इस साहित्य का मुख्य केन्द्र दलित जीवन संघर्ष, यथार्थ, मनुष्य केन्द्रित जीवन संवेदनाएं, विद्रोह, वेदना आदि को क्रान्तिकारी अभिव्यक्ति प्रदान करना है। बागुल जी महात्मा फुले, बुद्ध, डॉ. अम्बेडकर और कार्ल मार्क्स से प्रभावित थे। उन्होंने इन महानपुरूषों के विचार दर्शन और ज्ञान दर्शन का गहराई से अध्ययन किया जिसने इनकी लेखन की पृष्ठभूमि तैयार की।

शोषण मुक्त समाज निर्माण की दिशा में जिस तरह मार्क्सवादी दर्शन को स्वीकार किया जाता है, उसी तरह भारतीय समाज में, वर्णव्यवस्था व वर्णव्यवस्था की वैचारिकी का ज्ञान देने वाले डॉ. अम्बेडकर के विचार हैं। भारतीय समाज के जाति वर्गीय ढांचे में बदलाव लाने के लिए मार्क्स अम्बेडकर के समन्वयात्मक विचारों की नई सैद्धान्तिकी बागुल जी ने प्रस्तुत की है। नकार, विद्रोह, दुःख की अनुभूति, मनुष्य की महत्ता, ज्ञान विज्ञान के प्रति निष्ठा, करूणा, बंधुत्व, अनात्म, अनीश्वरवाद आदि मूल्यों का सृजन बागुल जी के लेखन में देखने को मिलता है।

दलित साहित्य ने परम्परागत सौन्दर्यशास्त्रीय मानदण्डों, मिथकों और कलावादी मान्यताओं को चुनौती दी और समय की मांग के अनुसार उनमें बदलाव किया और साहित्य में जनमानस के जीवन यथार्थ, जीवन संघर्ष, आत्मसम्मान और अस्मिता, मनुष्य की महत्ता और मानवतावाद के बीज साहित्य में बोये।

बागुल जी ने अपनी रचना-धर्मिता निभाते हुए समाज के यथार्थ पर से पर्दा उठाया है। उन्होंने जो पात्र अपनी कहानियों और उपन्यासों में प्रस्तुत किए है वे हमारे आस-पास रोजमर्रा की जिंदगी में देखने को मिल जाएंगे। जिन लोगों के योगदान को रोज हम अनदेखा कर देते हैं वही लोग दलित साहित्य के नायक और नायिका होते हैं। इनकी

कहानियों ने दलितों की सुसुप्त अस्मिता को जगाया तथा झोपड़पट्टीयों में गुजर कर रहे लोगों की पीड़ा, दुःख, प्रताड़ना, संताप आदि का सूक्ष्म चित्रण किया। इस कहानी में भी हम दलितों की उन सब समस्याओं और मुद्दों के संदर्भ में 'विद्रोह' कहानी का अध्ययन करेंगे, जिन्होंने उनके विकास मार्ग को बाधित किया है और मानव होने के सारे अधिकार छीन लिए हैं। इस कहानी को पढ़ने के पश्चात् आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी हो जाएगी :

क) भारतीय सामाजिक ढांचे में दलित जीवन के यथार्थ से

ख) दलित साहित्य के विभिन्न आयामों के बारे में जानकारी प्राप्त होगी

ग) दलित साहित्य के कलावादी सौन्दर्यशास्त्र और दलित लेखन के मनुष्य केन्द्रीत मानवतावादी मूल्यों में असमानताओं से

घ) दलित साहित्य में वेदना और विद्रोह की अभिव्यक्ति से

ङ) दलित साहित्य में बाबूराव जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका से

च) विद्रोह के कथानक और दलित चेतना की सक्रियता से

छ) मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष करते दलित वर्ग की चेतना की जानकारी आपको मिल जाएगी।

ज) भारतीय सभ्यता के सामाजिक यथार्थ में दलित जीवन संवेदना से

झ) दलित वर्ग के मानस में विकसित दो प्रवृत्तियों– प्रत्यक्ष वैचारिक संघर्ष और प्रत्यक्ष विद्रोही संघर्ष की स्थितियों से आप परिचित हो जाएंगे/जाएंगी।

8-1 iLrkouk

प्रस्तुत कहानी बाबूराव बागुल जी के बहुचर्चित कहानी संग्रह 'जब मैंने जाति छुपाई' में से ली गई है। इस कहानी में बाबुराव बागूल जी ने गरीबी में बसर कर रहे भाग्यों की दर्दनाक पीड़ा का चित्रण किया है कि किस प्रकार वे केवल मनुष्य होने का बोझ अपने सिर पर ढ़ो रहे हैं क्योंकि मानवीय अस्मिता के सारे अधिकार वर्ण व्यवस्था ने उनसे छीन लिए हैं उन्हें मुख्य धारा नामक घेरे से बहार धकेल दिया है, प्रगति के सारे मार्ग उनके लिए बंद कर दिए गए हैं। उनसे अमानवीय काम करवाया जाता है। धर्म की गोलियां देकर उनका दिमाग धो दिया जाता है।

दलित साहित्य में जन्मजात जातिगत पूर्वाग्रहों के विद्रोह का भाव है। जो कि इस कहानी में भी देखने को मिलता है। समाज में धर्म के आधार पर जो मूल्य आधारित है उनमें बदलाव लाने की चेतना दलित साहित्य में दृष्टिगोचर है। इसीलिए लंबी दासता से भरे जीवन की अमानवीय स्थितियों से मुक्त होने की बेचैनी दलित साहित्य में बखुबी देखी जा सकती है। 'विद्रोह' कहानी का मुख्य पात्र जय इसका उदाहरण है। समाज में व्याप्त असमानता और भेदभाव मुख्यधारा की अराजकता से पैदा हुए हैं जो निरंतर समाज को पतन की ओर धकेल रहे हैं।

दलित आलोचकों के अनुसार साहित्य सिर्फ आनंद, धन, या फिर नाम कमाने के लिए नहीं रचा जाना चाहिए अपितु उसमें मानव के विकास, सरोकार, उसकी चिंताएं आदि को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। जैसा कि कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है लेकिन साहित्य यदि समाज में प्रचलित कुरीतियों, संघर्ष आदि को रेखांकित नहीं करता है तो वह केवल अजायबघर में रखने की वस्तु मात्र रह जाता है। साहित्य को

सामाजिक जीवन का हिस्सा अवश्य बनना चाहिए। साहित्य को जमीनी सच्चाईयों से काटकर नहीं देखा जा सकता।

साहित्य जब समाज को अनदेखा करके अपना बौद्धिक राग अलापता है तो वह समाज में चल रही क्रिया-प्रतिक्रियाओं से भी आँखे चुरा लेता है। ऐसा साहित्य ऐसे कबूतर की तरह होता है जो बिल्ली के आने पर आँखें बंद कर लेता है ताकि बिल्ली उसको न देख पाये परंतु वह इस बात को भूल जाता है कि उसके न देखने से बिल्ली उसपर हमला करना नहीं छोड़ेगी, अंततः वह बिल्ली का शिकार हो जाता है। यही कारण है कि बावजूद सभी रसों और शिल्प के हिंदी साहित्य में रीतीकाल, छायावाद आदि अप्रासंगिक हो जाते हैं। क्योंकि इस काल के रचनाकार समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दशाओं से कटे से नजर आते हैं। अपने आस पास घट रही बड़ी से बड़ी घटनाओं से उनका कोई लेना देना नहीं है। साहित्य का काम लोगों की सोई हुई चेतना को जगाना होता है।

इस कहानी का मुख्य उद्देश्य सामाजिक जीवन, दलितों के उत्पीड़न शोषण तथा गुलामी के बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा है। इस कहानी में जय अपने आसपास फैली भेदभाव की दुनिया से दुखी होकर विद्रोह करने की स्थिती में पहुँच जाता है। विद्रोह की जो भावना जय के जेहन में पनप रही है वह अकारण ही नहीं है अपितु समाज में व्याप्त मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों और समाज में स्थित जातीय शोषण के कारण शिक्षित दलितों की रात की नींदे खराब कर रही हैं।

8-2 nfyr lkfgR; esa ckcqjko ckxqy dk LFkku

दलित साहित्य के विकास में बाबूराव बागुल जी का स्थान अति महत्वपूर्ण रहा है। दलित साहित्य आंदोलन की पहली पीढ़ी के लेखकों ने दलित जीवन की व्यथा एवं वेदना को प्रस्तुत किया। वहीं दूसरी पीढ़ी के लेखकों ने अपनी रचनाओं में विभिन्न विधाओं के माध्यम से दलित जीवन के मानसिक विद्रोह, वेदना, मानव केन्द्रित संवेदना, जीवन संघर्ष, मुक्ति हेतु क्रान्तिकारी चेतना को अपनी लेखनी द्वारा पाठकों के समक्ष रखा। इसी दौर में बाबूराव बागुल जी की कहानियों ने दलित साहित्य को एक अतुल्य द्रूत गति प्रदान की। उनकी कहानियां धमाके के साथ उपस्थित हुई और पूर्ण रूप से अपने मकसद में कामयाब हुई।

बाबूराव बागुल जी दलित पैंथर आंदोलन के संस्थापक सदस्यों में से एक थे और उन्होंने व्यक्तिगत रूप से भी इस आंदोलन में सक्रिय सहभागिता निभाई। यही कारण है कि उनकी रचनाएं बहुत विस्फोटक हैं जो क्रांति के बारूद से भरी हुई हैं। उनकी कहानियों के पात्र जोश और उत्साह से भरे हुए हैं। वे दब्बूपन से ग्रसित नहीं हैं अपितु अपने अधिकारों के लिए किसी को भी ललकारने के लिए तैयार हैं। तत्कालीन युवा पीढ़ी बागुल जी की क्रांतिकारी विचारों से अत्यंत प्रभावित थी। 'विद्रोह' कहानी का नायक कोई और नहीं अपितु उस पीढ़ी का एक नौजवान है जो अपने हक की बात करना जान गया है। उसको सदियों से चली आ रही रूढ़िवादी परम्पराओं में से बू आने लगी है। शिक्षा ने उसके स्वाभिमान को जागृत कर दिया है। वह झूठ और क्रूरता पर आधारित सामाजिक मूल्यों को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता है।

बागुल जी ने दलित जीवन के सभी आयामों को करीब से जीया है और उन तमाम दुःखों को स्वयं भोगा है जो उनकी रचनाओं में नजर आते हैं। इस वजह से उनकी लेखनधर्मिता और रचनाएं दलित जीवन की पक्षधर रही हैं। बागुल जी ने अपने लेखकीय कर्म से न केवल दलित साहित्य को समृद्ध किया बल्कि सम्पूर्ण मराठी साहित्य में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने का गौरव प्राप्त किया।

8-3 Ckkcjko ckxqy % thouoÙk ,oa ys[ku ifjp;

बाबूराव बागुल (1930–2008) जी को दलित साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है। उनका जन्म महाराष्ट्र के नासिक जिले में 1930 को हुआ। दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने कई जगहों पर मेहनत मजदूरी की। इस दौरान उनकी लेखनी निरंतर चलती रही और कई मराठी पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई जिन्होंने मराठी पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। 1963 में इनका प्रथम कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ जिसका नाम था 'जब मैंने जाति छुपाई'। इस कहानी संग्रह ने मराठी साहित्य में हलचल मचा दी। इस संग्रह में उन्होंने समाज की कटु सच्चाइयों का चित्रण क्रोधशील रूप में किया है। इस प्रकार उन्होंने दलित साहित्य को एक नई गति प्रदान की। वर्तमान के आलोचक इस कहानी संग्रह को दलित साहित्य का महाकाव्य मानते हैं। इस कहानी संग्रह के बाद बागुल जी का काव्य संग्रह 'अकार' (1967) प्रकाशित होते ही चर्चा में आ गया और उनको मराठी साहित्य में एक खास पहचान प्रदान की। परन्तु दूसरे कहानी संग्रह जिसका नाम था 'मृत्यु सस्ती हो रही है' ने उनको अपने युग की दलित अभिव्यक्ति का दर्जा प्रदान किया। आज के युग में इस कहानी संग्रह को दलित साहित्य में मील का पत्थर माना जाता है। 1970 में उन्हें 'हरिनारायण आपटे' पुरस्कार से नवाज़ा गया।

8-4 Ckkcjko ckxqy % lkfgR;d fopkj vkj ys[ku /kfeZrk

किसी भी रचना का अध्ययन करने से पहले उसके लेखक का साहित्य के प्रति दृष्टिकोण और लेखन की वैचारिकी को समझ लेना आवश्यक होता है। इसलिए इस कहानी का अध्ययन करने से पहले हम बाबूराव बागुल के साहित्यिक विचारों की जानकारी हांसिल करेंगे।

बाबूराव बागुल जी के लेखन का केन्द्र बिन्दु दलित उत्थान रहा है। उनके अनुसार दलित केवल शूद्र वर्ग के लोग नहीं अपितु इसमें समाज के वे सभी लोग शामिल हैं जो किसी न किसी रूप से शोषित, उत्पीड़ित हैं या जिनको गुलामी का जीवन बसर करना पड़ रहा है या फिर समाज के दरिंदो के हाथों प्रताड़ित होना पड़ रहा है। जिस साहित्य में शोषण के शिकार लोगों को अभिव्यक्ति मिलती है उसे दलित साहित्य कहा जाता है। डा. अम्बेडकर, मार्क्स और महात्मा फुले के क्रांतिकारी विचारों ने उनके लेखन की पृष्ठभूमि तैयार की है। इस प्रकार बागुल जी ने अपनी रचना-धर्मिता में महात्मा बुद्ध, मार्क्स, फुले और डॉ. अम्बेडकर की मिश्रित विचारधारा का प्रतिपादन किया है। समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए उन्होंने मार्क्स और डॉ. अम्बेडकर के मिले जुले विचारों की सैद्धान्तिकी प्रस्तुत की। उनपर महात्मा बुद्ध का भी प्रभाव रहा है। उनको महात्मा बुद्ध बहुत प्रिय लगते हैं क्योंकि महात्मा बुद्ध के ह्रदय में मनुष्य के प्रति अपार करूणा और मानव जाति के कष्टों से निजात पाने की बुद्धिमता उपलब्ध है।

बागुल जी मार्क्स के विचार दर्शन से भी प्ररित रहे हैं क्योंकि मार्क्स शोषण पर आधारित समाज संरचना का बहिष्कार करता है। मार्क्सवाद समतामूलक समाज का समर्थन करता है। मार्क्स के अनुसार मनुष्य की मानसिक सोच उसकी आर्थिक स्थिती पर निर्धारित होती है। यदि एक व्यक्ति की आर्थिक दशा मजबूत है तो उसकी सोच में परिवर्तन आना शुरू हो जाता है। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'दुःख की सैद्धान्तिकी' को 'शोषण की सैद्धान्तिकी' में प्रस्तुत करने का श्रेय डॉ. अम्बेडकर और मार्क्स को जाता है। उनका शोषण मुक्त समाज का निर्माण करने में अद्वितीय योगदान रहा है। इस प्रकार बागुल जी ने उपरोक्त चर्चित

महानपुरूषों की मिले-जुले विचार-दर्शन को स्वीकार करके दलित जनमानस में विश्वास रखने वाली वैचारिकी प्रतिपादित की है।

बागुल जी के अनुसार दलित साहित्य की दृष्टि बहुत व्यापक है। वह पक्षपात या विषमता पैदा करने वाली नहीं है। दलित साहित्य तो मानव, स्वतंत्रता, भाईचारा तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना करने में विश्वास रखता है। बागुल जी की रचनाओं में दलित संवेदना सर्वोपरी रही है। इनकी रचनाओं में अमानवीय मूल्यों के प्रति नकार, विद्रोह देखने को मिलता है। इसके साथ-साथ जनमानस के दुःख की अनुभूति, मनुष्य की महत्ता, बंधुत्व, ज्ञान-विज्ञान के प्रति निष्ठा आदि को बागुल जी के लेखन में स्थान मिला है। बागुल जी के इन सभी साहित्यिक विचारों को ध्यान में रखते हुए हम 'विद्रोह' कहानी का अध्ययन करेंगे।

8-5 ^fonkg* dgkuh dh dFkkoLrq

प्रस्तुत कहानी की शुरूआत प्रभु के घर से होती है। प्रभु ने दो साल पहले अपने बेटे की नौकरी के लिए अर्जी भेजी थी, जिसका जवाब अब आया है। प्रभु का बेटा जय दसवीं कक्षा में पढ़ रहा है जो कि इस भंगी की नौकरी के सख्त खिलाफ है। परन्तु उसके माता-पिता चाहते हैं कि वह इस नौकरी को स्वीकारे। सभी उस पर क्रोधित हैं और निरंतर दबाव बनाने की कोशिश कर रहे हैं। प्रभु की अंतिम घड़ी नजदीक है वह खाट पर पड़ा हुआ है। लेकिन जय पढ़ाई नहीं छोड़ना चाहता है। जबरदस्ती लादी गई भंगी की नौकरी वह नहीं करना चाहता है। बल्कि वह तो पढ़ लिखकर सुकरात की भांति अपने समाज से अमानु प्रथा का, अस्पृश्यता का नाश करना चाहता है। इसलिए वह निरन्तर तीक्ष्ण शब्दों का, आक्रोश, गुस्से से तर्क पर तर्क अपने परिवार के सामने रखता जा रहा है।

प्रभु को इस बात की चिंता खाई जा रही है कि उसके मरने के बाद घर का बोझ कौन संभालेगा। इसलिए प्रभु लगातार जय को समझाने की कोशिश करता है कि वह नौकरी उसके लिए कितनी जरूरी है। लेकिन जय जवाब में कहता है कि यदि उससे भंगी की नौकरी ही करवानी थी तो उसके मन में स्वाभिमान का दिया क्यों जलाया। भंगी की नौकरी तो बिना पढ़े लिखे भी हो सकती थी।

प्रभु जय को धर्म का, गरीबी का, जाति का सभी का अहसास दिलाने की कोशिश करता है। परन्तु जय के ऊपर प्रभु की बातों का कोई असर नहीं होता है। जय जवाब देता है कि वह स्कूल छोड़ सकता है, चोरी-डकैती करने को तैयार है परन्तु भंगी की नौकरी नहीं करेगा। प्रभु जय के अन्दर उठती हुई भावनाओं के सैलाब को समझ पा रहा है किन्तु उसे कोई और चारा नजर नहीं आता। वह कहता है कि तुझे अपनी मां से इस प्रकार से पेश नहीं आना चाहिए। तू कभी उसे रास्ते में मां कहकर नहीं पुकारता, उसके साथ कहीं आता जाता नहीं है। वह बेचारी रोती-कुढ़ती रहती है। उसे मातृत्व भोगने दे, मां की तरह पेश आने दे। इस सच्चाई को सुनकर जय पश्चाताप से भर जाता है। और जैसे ही भानी (जय की मां) उसके सामने आती है वह उसके पैरों में गिर जाता है और क्षमा याचना करता है। अपने रवैये से शर्मिंदा होकर वह अपनी मां को लेकर नौकरी के लिए चल देता है।

कहानी के मध्य में जब भानी अपने बेटे को लेकर नौकरी के लिए ऑफिस में पहुंचती है तो काम बांटने वाला क्रिश्चियन साहब मुकादम (ठेकेदार) को बुलाकर जय को कूड़ा ढोने वाली गाड़ी (ठेला) पकड़ा देता है। यह देखकर भानी सन्न हो जाती है। क्योंकि भानी ने बड़े साहब से काफी सिफारिश कर रखी थी कि उसके बेटे को गंदगी साफ करने का काम न दिया जाए। यही बात वह क्रिश्चियन साहब को भी बताती है कि जय दसवीं कक्षा में पढ़ता

है। किन्तु क्रिश्चयन साहब कहता है कि जय है तो मेहतर ही और आया है मेहतरी के लिए ही।

कहानी के निष्कर्ष की ओर जय चुपचाप मुकादम के साथ चलने लगता है। भानी भी साथ-साथ चलती है उसके अन्दर आत्मकलेश भर जाता है, गला सूख जाता है, हृदय छलनी हो रहा होता है। मुकादम उनको घाटकोपर के एक विभाग में ले आता है जहां पर एक विशाल जनसंख्या के लिए बत्तीस शौचालय हैं। वहां रूककर मुकादम जय को बताता है कि उसका काम शौचालयों में रखे मैले के डिब्बों को उठाकर मैला ढोने वाली गाड़ी में डालना एवं इन शौचालयों की खूब सफाई करना है। और यदि वह सफाई ठीक से नहीं करेगा तो नौकरी छीन ली जाएगी। वहां का माहौल इतना गंदा होता है कि जय के मन का विद्रोह और ज्वलंत हो जाता है।

भानी जो कि पश्चाताप की आग में जल रही है वह जय को यह गंदा काम करने से मना करने लगती है क्योंकि उसको इस बात का अंदाजा नहीं था कि ये लोग उसके पढ़े-लिखे बेटे से इतना घिनौना काम करवाएंगे। तभी वहां पर मैला ढोकर ले जाने वाली गाड़ी आकर रूकती है और जय शौचालयों की संकरी गली में घुस जाता है। लेकिन बत्तीस शौचालयों की भयंकर दुर्गंध से उसकी आंखो के आगे अंधेरा छा जाता है। वहां पर फैली गंदगी, किलबिलाते किड़े, खून से सने कपड़े और कपास के गोले आदि देखकर उसका मन जुगुप्सा से भर उठता है। उसके मन की उथल-पुथल और तेज हो जाती है। इतने में गाड़ीवान उसे जरा जल्दी काम करने को कहता है। जय की हालत देखकर पत्थर की तरह, जड़ हो चुकी भानी जय के करीब जाकर उसके हाथ से मैले का डिब्बा छिनने का प्रयत्न करती है और गिर जाती है, जिससे उसकी अंगुलियां और बदन मैले से लथपथ हो जाता है। तभी गाड़ीवान आगे बढ़कर भानी को सहारा देता है और जय को घृणा से 'बेवकूफ' कहता है। इस शब्द से जय के रोम-रोम से निकलता विद्रोह और उग्र हो जाता है और वह गाड़ीवान पर टूट पड़ता है। गाड़ीवान सहायता के लिए चिल्लाता है। आसपास काम करने वाले भइये वहां एकत्रित हो जाते हैं। दो महतरों के बीच की लड़ाई को वे इसलिए नहीं रोकते कहीं वे अछूत न हो जाएं और सारे गांव का मैला उन्हें न लग जाए। जय और गाड़ीवान एक दूसरे की जान लेने को आतूर हैं। जब गाड़ीवान लाश की तरह निर्जीव होकर गिर जाता है तब जय के भीतर का आवेश खत्म होता है।

वह रोता हुआ अपनी मां से अपने किए की माफी मांगता है। जो लोग आसपास खड़े होकर तमाशा देख रहे थे वे जय के अंतःकरण में भड़क रहे विद्रोह का एहसास नहीं कर पा रहे थे।

8-6 fonkg % Hkk"kk 'kSyh

दलित साहित्य ने हिन्दी भाषा शैली के मानदंड़ काफी हद तक बदल दिए हैं। इस साहित्य में आम बोलचाल की भाषा, टपोरी भाषा और ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो समाज की भाषा का अभिन्न अंग है। किन्तु गैर दलित साहित्य के लेखकों ने उन शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में नहीं किया इसका कारण यह है कि वे शास्त्रीय भाषा का प्रयोग अपने लेखन में करते आए हैं। दलित लेखकों ने कृत्रिम या बनावटी भाषा का प्रयोग न करके आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। जब साहित्य में आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग भाषा किया जाता है तो वह साहित्य समूचे जन समाज का प्रतीक होता है वहीं जब भाषा को जानबूझकर जटील बनाया जाए तो समझिए बौद्धिक ज्ञान का दिखावा किया जा रहा है। और इस तरह की भाषा में लिखा साहित्य केवल सीमीत लोगों के लिए ही हो सकता

है। दलित साहित्य में शब्दों के ऊपर चासनी की परत नहीं चढ़ाई जाती अर्थात जो शब्द जैसे प्रयोग होते है उनका उसी तरह प्रयोग करने का संभव प्रयास रहता है। जिससे कि उन शब्दों की गहनता और असर बरकरार रहता है।

8-7 vkykspuk ,oa fo'ys"k.k

यदि अतित में झांककर देखें तो हम पांएगे की जिसे मुख्य धारा का नाम दिया गया है वह वास्तव में वर्चस्ववादी शक्तियों, सत्ता पर आसीन, समय से कटी हुई, उन लोगों की धारा है जिन्होंने वर्ण व्यवस्था का सहारा लेकर दलितों को अपनी तथाकथित मुख्यधारा से बाहर फेंक दिया। उनके विकास के तमाम दरवाजों पर ताले लगा दिए। उनके आत्मसम्मान, पहचान, अस्मिता, संस्कृति आदि को तहस-नहस कर दिया। इस मुख्य धारा ने संवेदनहीन होकर दलित के अस्तित्व को नकार दिया। इन तमाम अमानवीय कारणों ने दलित साहित्य नामक सशक्त धारा को जन्म लेने को मजबूर किया और यह धारा एक ही दिन में उत्पन्न नहीं हुई अपितु इसकी एक लम्बी संघर्ष यात्रा है।

प्रस्तुत कहानी में मुक्ति-संघर्ष की चेतना पर आधारित है। इस कहानी में वर्ण व्यवस्था का, धर्म, संस्कृति, सांप्रदायिकता, आदि का विरोध दिखाई पड़ता है। कहानी में मुख्यपात्र के विद्रोह को दिखाया गया है कि वह किस प्रकार तिरस्कार, अपमान, घृणा, द्वेष के खिलाफ लड़ना चाहता है। उसके रोम-रोम में से समाज में बदलाव लाने का जज्बा भरा हुआ है। वह सदियों से चली आ रही अतार्किक रूढ़ियों को ध्वस्त करने को उतारू है। यह कहानी मनुवाद को नकार है। मनु ने जो वर्ण व्यवस्था बनाई जय उसको तोड़ देना चाहता है। ''लेकिन भंगी के लड़के को भंगी की ही नौकरी करनी चाहिए, ऐसा किसने कहा है?'' जय एक पढ़ा लिखा नौजवान है और उसको मालूम है कि संविधान ने हमें अपनी इच्छा से काम चुनने की और करने की आजादी है। जय तो पढ़ लिखकर सुकरात की तरह विद्वान बनना चाहता है और देश में व्याप्त अमानुष प्रथा और असपृश्यता का नाश करना चाहता है। शिक्षा ने जय की स्व-चेतना को जागृत कर दिया है। वह सारी बेड़ियां तोड़कर अपनी मंजिल पाना चाहता है। वह सदियों से चली आ रही रूढ़ियों को तोड़ देना चाहता है। वह लादी हुई भंगी की नौकरी नहीं करना चाहता।

इस कहानी से जाहिर होता है कि गरीबी शोषण का कारण है। यदि मानव की स्व-चेतना, स्वाभिमान नहीं जाग पा रहा तो उसका मुख्य कारण गरीबी है। वर्ण व्यवस्था ने शूद्रों को गरीब बना कर रखा ताकि वे केवल दो टूक रोटी के बारे में ही सोचें। यदि उनका पेट भर जाएगा तो वे अधिकारों की बात करेंगे, शासन करने की बात करेंगे। इसलिए उनको शिक्षा प्रदान नहीं की कहीं वे पढ़ लिखकर हमारे समान न बन जाए। और यदि ये लोग बराबरी की बात करेंगे तो बेगार कौन करेगा। लेकिन जैसे ही शिक्षा के द्वार दलितों के लिए खुले तो उन्होंने अपनी काबलियत को सत्यापित करना शुरू कर दिया। उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान हो गया। कहानी का मुख्य पात्र जय अपने पिता से कहता है ''मुझे भंगी ही बनाना था तो फिर पढ़ाया क्यों? मेरे मन में स्वाभिमान का, ज्ञान का, इंसानियत का दिया क्यों जलाया?.......'' यह जाहिर है कि प्रभु भी उसे पढ़ाना चाहता था किन्तु गरीबी एक ऐसी डंकनी है कि इंसान को अमानवीय कर्म करने पर मजबूर करती है। जिस उम्र में जय की उम्र के लड़के मौजमस्ती में लिप्त होते हैं वह उस उम्र में अपनी सामाजिक स्थिती को लेकर चिंतित है। वह दिन-रात अपनी पढ़ाई करता है ताकि पढ़ लिखकर इस भेदभाव के दलदल से निकल सकें।

अन्य गैर दलित कहानियों में यदि हम देखें तो भूख एक बहुत छोटी चीज मानी जाती है। लेकिन दलित कहानियों में भूख एक मौलिक मूल्य है। यदि हम 'जहरीली रोटी' का स्मरण करें तो उसमें भूख के कारण – वह दलित गोबर और मूत्र में लथपथ अनाज को खाता है जिससे की उसके शरीर में जहर फैल जाता है और वह अपनी जान से हाथ धो बैठता है। गरीबी ने ही जय के पिता का स्वाभिमान मार दिया। वह कहता है ''और तेरी नौकरी की हमें जरूरत है। तू नौकरी कर रहा होता तो मृत्यु इतनी जल्दी मेरे पास नहीं आ रही होती। तेरी मां कंकाल नहीं बनी होती...'' गरीबी इंसान को समय से पहले बूढ़ा बना देती है। बीमारी के इलाज के लिए पैसा नहीं होता है और एक गरीब बेमौत मारा जाता है। कर्ज और शोषण की मार अलग से सहनी पड़ती है।

जब जय पूछता है कि यह किसने कहा कि एक भंगी के लड़के को भंगी की ही नौकरी करनी चाहिए। तब उसके पिता जी कहते हैं ''अपनी गरीबी ने, धर्म ने और देश ने'' तब जय जवाब देता है ''कैसा धर्म? जिसने मनुष्य को मार डाला, जानवर समझा, उस धर्म ने? आदमी की जगह पत्थर को महत्व देने वाले देश ने?''

उपरोक्त पंक्तियां हमारे देश और धर्म की सच्चाइयों पर से पर्दा हटाती हैं। जय ऐसे देश और धर्म के खिलाफ है जो धर्म मनुष्य को मनुष्य न समझे और उसे नरक में धकेल कर रखे। ऐसा देश जो मनुष्य से ज्यादा पत्थरों को महत्ता देता है। यह कहानी अध्यात्मवाद, मूर्तिपूजा, आत्मवाद आदि का खंडन करती नजर आती है। जब इंसान का वर्तमान ही नरक में है तो भविष्य में स्वर्ग की इच्छा करना बड़ा मजाक सा प्रतित होता है। जो इंसान अपने आपको बुद्धिजीवी होने का दावा करता है वह पत्थर और इंसान में भेद करने में असक्षम है।

जय के अंदर जो विद्रोह पनपा है यदि यह विद्रोह हर दलित के अन्दर पैदा हो जाए तो अवश्य ही देश और समाज एक नया रूप ले लेगा। दलितों ने तथाकथित उच्च वर्ग की सदियों से सेवा और गुलामी की लेकिन उन्होंने इनकी दशा सुधारने की जगह और कीचड़ में मिलाया है। ऐसे समय में जय जैसे शिक्षित ही जनक्रांति ला सकते हैं। किसी भी देश का भविष्य उसके युवाओं पर टिका होता है।

जय एक जीवंत पात्र है जिसके अंदर निरंतर हलचल हो रही है। वह बेचैन है। प्रभु कहता है ''वे तुझे भंगी का काम नहीं देंगे, मुकादम ने साहब से विनती की। तेरी मां ने सब के सभी के पांव पकड़े हैं। जाकर तो देख'' जय कहता है ''वे मानने वाले नहीं हैं। वो बड़ा साहब भले ही क्रिश्चियन है और दूसरा मुसलमान पर वे मुझे भंगी ही समझेंगे..... पिताजी, स्कूल में भी सब मुझे विद्यार्थी न कह भंगी कहते हैं। इस तरह कदम-कदम पर छलने वाला देश दुनिया में कहीं नहीं। कितना सहन करूं? कितना निगलूं? यह देश है या बंदीशाला? कैदखाना...... और कोई गुनाह न करने के बावजूद मैं गुनहगार की तरह अपमानजनक जीवन क्यों जी रहा हूँ। नरक यातना क्यों भुगत रहा हूँ? क्यों..... क्यों...........क्यों?

पारिवारिक स्तर पर बच्चों के संस्कारों में जाति के बीज डाल दिए जाते हैं। स्कूल जाने वाले बच्चों को हिदायतें दी जाती है कि 'दलित' बच्चों से दूर रहें। इस कहानी से ओमप्रकाश वाल्मिकी की स्कूल की घटनाएँ ताजा हो जाती हैं। जिस प्रकार से मास्टर ओमप्रकाश का नाम न लेकर उसकी जाति से सम्बोधित करता था ''ओए चूहड़े के'' इसी तरह से एक दलित जाति का इंसान चाहे कितने भी अच्छे कर्म कर ले, किसी भी ओहदे पर पहुँच जाए, उसको उसकी जाति से जाना जाता है। और यही इस देश की विडम्बना

है। और यह भी सत्य है कि इस देश जैसा कोई अन्य देश नहीं जो इस प्रकार की व्यवस्था पर विश्वास करता है। यूरोपियन देशों में वर्ग पाए जाते हैं जो कि व्यक्ति के धन के आधार पर बनते हैं जो कि उस व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को निर्धारित करते हैं। लेकिन इस देश में यदि कोई दलित मेहनत से धन एकत्रित कर भी लेता है तो भी उसका दर्जा नहीं उठता, वह वहीं का वहीं उसी जाति का रहता है।

ऐसे देश में जय जैसे युवक अपने आपको बंदी महसूस करते हैं। ऐसे वातावरण में उनका दम घुटता है। वे स्वतंत्रता की खुली सांस नहीं ले सकते। उन्हें हमेशा तथाकथित उच्च जाति का शोषण, गालियां, पिटाई आदि सहन करनी पड़ती है।

प्रभु अपने बेटे के गुणों को जानता है। वह जय के सुंदर स्वप्नों की कद्र करता है लेकिन वह हालात के हाथों मजबूर है। वह कहता है ''तुझे हमारी कोख से जन्म नहीं लेना चाहिए था। मैंने तेरी बचपन में शादी कर दी बांध दिया।'' बावजूद इसके कि जय की शादी बचपन में कर दी गई लेकिन वह अपने कर्म से नहीं भटका। उसकी लगन का दीया यूं ही जलता रहा है।

इस देश की संस्कृति की विडम्बना है कि जय कहता है ''कैसी यह संस्कृति? जहां बेटा मां को भंगी का काम करने पर तुच्छ समझता है, द्वेष करता है, उसके हाथ का अन्न खाने से झीझकता है। इस संस्कृति ने अस्पृश्यता पैदा नहीं की होती तो मैं अपनी बूढ़ी मां को प्रचंड पीड़ा देने वाला दैत्य नहीं बना होता।

यदि हम इस कहानी को डॉ. जयप्रकाश 'कर्दम' जी द्वारा लिखित कहानी 'तलाश' से तुलना करें तो मालूम पड़ता है कि 'विद्रोह' कहानी में अन्तःकरण की जो अभिव्यक्ति है वह बहुत तीव्र हुई है। भाषा का जो प्रयोग हुआ है, वह बहुत विस्फोटक है। वहीं दूसरी ओर यदि हम जयप्रकाश 'कर्दम' जी की बात करें तो हम पाते हैं कि वे दलित साहित्य की तीसरी पीढ़ी से सम्बन्धित हैं जिसमें महात्मा बुद्ध का मानवतावाद दर्शनीय है। 'तलाश' कहानी का मुख्य नायक रामबीर है जिसमें मानवीय संवेदना भरी है। वह रामबती के चूहड़ी होने से घृणा नहीं करता अपितु सम्मान की दृष्टि से देखता है। वह उसके श्रम की कद्र करता है। वह पहले उसे सफाई के काम पर लगाता है और बाद में उसकी कार्यकुशलता के आधार पर उसे खाना पकाने का जिम्मा भी सौंप देता है। रामबीर की नजरों में सभी मानव बराबर हैं और कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता। इंसान की सोच छोटी या बड़ी हो सकती है। वहीं 'विद्रोह' कहानी का नायक जय अपनी मां के भंगी का काम करने से घृणा करता है। उसके हाथ के बने खाने को नही खाता। उसके साथ चलने में उसको शर्म आती है। वास्तव में समाज ने उसकी ऐसी सोच बनाई है। जय के अंदर ज्वालामुखी खौल रहा है, वह लावा उगलने को बेताब है और जैसे ही मैला ढोने वाला वाहन चालक उसकी भावनाओं को ठेस पहुंचाता है वह उस पर टूट पड़ता है और तब तक शान्त नहीं होता है जब तक उसका आवेग शान्त नहीं होता है। परन्तु रामवीर के अन्दर विद्रोह के बीज तो विद्यमान हैं परन्तु वह बड़े सुलझे हुए तरीके से अपनी बात को गुप्ता के समझ रखता है। वह कानून को हाथ में लेकर जातिवाद नामक बीमारी से मुक्ति नहीं चाहता बल्कि वह देश का जो सर्वोच्च कानून है उसका सहारा लेकर भेदभाव के किटाणुओं से मुक्ति चाहता है गुप्ता को जो कि उच्च वर्ग का प्रतीक है को बखूबी अहसास दिलाता है कि अब तुम्हारी अराजकता, झूठ और अत्याचार पर आधारित तानाशाही नहीं चलेगी और तुमको भी देश के सर्वोच्च कानून की पालना करनी होगी जो कि सभी देशवासियों को समानता का अधिकार प्रदान करता है।

8-8 nfyr lkfgR; dk lkSn;Z'kkL=

भूतकाल में साहित्य का उद्देश्य राजा महाराजाओं के दरबार में, या उच्च कुल के लोगों की महिमा का बखान करना था। उस समय एक आम आदमी को साहित्य में कोई स्थान प्रदान नहीं किया जाता था। साहित्यकार भी अर्थ उपार्जन हेतु बनावटी प्रशंसा या कल्पना लोक का भ्रमित करन देने वाला साहित्य रचने में आनंदित रहते थे।

दलित साहित्य ने साहित्यशास्त्र के बने बनाए मापदंड़ों को नकारा है। साहित्यशास्त्र के मापदंड़ों के प्रति ये नकारात्मक भाव दलित जीवन की कटु सच्चाइयों से उपजा है। दलित साहित्य उन सभी पारंपरिक मापदंड़ों को नकारता है जो मनुष्य की समता स्वतंत्रता आदि के बीच में रोड़ा अटकाने का काम करते हैं। दलित साहित्य के सारे मूल्य मनुष्य के सर्वांगीण विकास के पक्षधर हैं और समकालीन साहित्य को उर्जा प्रदान करने वाले हैं। इन मूल्यों ने दलित जीवन में स्व-चेतना का संचार किया है। इन्ही नव चेतनाओं के आधार पर दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र विकसित हो रहा है।

अतीत में जो साहित्य लिखा गया वह राजाओं महाराजाओं के गुणगान के लिए लिखा गया था। जिसमें राजा-महाराजाओं को नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया था। उसे साहित्य के नायक देवी-देवता थे। और सहित्य उनको महिमा मंड़ित करने के लिए लिखा गया था। इस प्रकार का साहित्य आज के संदर्भ में उपयुक्त नजर नहीं आता। इस साहित्य ने दलितों को हासिये पर धकेल दिया था। अभी तक हिन्दी साहित्य में दलित पात्रों को 'ऑब्जैक्ट' की तरह प्रयोग किया था उनको कभी 'सब्जैक्ट' बनाने की चेष्टा नहीं की गई थी।

लेकिन दलित साहित्य ने इन 'आब्जैक्टस' को 'सब्जैक्टस' का दर्जा प्रदान किया वे नायक की भूमिका में दृष्टिपटल पर नजर आये। दलित साहित्य ने ऐसे पात्रों को जुबान दी जिनके मुंह से जुबान खींच ली गई थी। अब वे अपने अनुभवों को कष्टों को, दुखों को अभिव्यक्त करने में स्वतंत्र थे। दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र यथार्थ पर आधारित है। दलित साहित्य का शास्त्रीय सौन्दर्य शास्त्र के आधार पर विश्लेषण नहीं किया जा सकता अपितु अम्बेडकरवादी विचार दर्शन दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र है।

शरण कुमार लिंबाले जी के अनुसार 'क्या यह पागलपन नहीं है कि जब एक लड़का और लड़की एक गार्डन में विचरण करते हैं तो वर्णन शास्त्रीय बन जाता है, किन्तु जब कोई लेखन हजारों लोगों की दास्ता से मुक्ति के संघर्ष और बलिदान की बात करता है तो वर्णन शास्त्रीय नहीं माना जाता।'

साहित्य में रस, कला, आनंद आदि ने आम आदमी के दुख दर्द और उसकी टीस को दरकिनार कर दिया था। दलित साहित्य ने यह जिम्मा अपने सिर पर लिया कि साहित्य और समाज के रिस्तों को जोड़ा जाए। दलित साहित्य जनमानस को उसकी गरिमा और मानवीय अधिकारों को वापिस लौटाने के लिए प्रतिबद्ध है। इसकी प्राथमिकता में वो सारे मूल्य शामिल हैं जो एक मानव को मानव के रूप में पहचान देते हैं।

हिन्दू धर्म-ग्रंथों मे दलितों के प्रति जो छूआछात का भाव देखन को मिलता है वही मूल्य उन धर्मग्रंथों का अनुसरण करने वाले लोगों ने ग्रहण कर लिया परिणाम स्वरूप सामाजिक जीवन में दलित के हिस्से मे प्रताड़ना, अपमान, तिरस्कार ही आया। धर्म के नाम की जो अफिम दलितों को पिलाई गई कि कर्म करते रहो और फल की चिन्ता मत करो अर्थात

बेगार करते रहो और पारिश्रमिक की मांग मत करो। यदि बदले में कुछ आस करोगे तो नरक में जगह पक्की करोगे। इस प्रकार दलितों से जानवरों की भांति काम लिया गया। उनको समझाया गया कि तुम्हारा धर्म उच्च जाति की सेवा करना है।

हिन्दू संस्कृति की यह विशेषता ही कहिए की जो इंसान कड़ी धूप में हल जोतता है, मजदूरी करता है, साफ सफाई सुनिश्चित करता, जिसके मेहनत पर देश की अर्थव्यवस्था टीकी है उसे दलित कहा जाता है। ये वो संस्कृति है जिसमें कोई अपना सामाजिक दर्जा नहीं बदल सकता क्योंकि उसकी सामाजिक स्थिति उसकी मेहनत, अर्थ से नहीं अपितु उसकी जाति से निर्धारित होती है। वह चाहे कितनी भी मेहनत कर ले लेकिन वह लगी हुई जाती की मुहर को नहीं मिटा सकता। इस वर्ण व्यवस्था ने उसके मानव होने के सभी अधिकारों को छीन लिया है।

8-9 lkjka'k

'विद्रोह' कहानी समाज में प्रचलित जातिवाद और दलित शोषण के खिलाफ मुक्ति-संघर्ष की अभिव्यक्ति है। इस कहानी के माध्यम से बाबूराव बागुल जी ने एक ओर समाज की जड़वादी मानसिकता की आलोचना की है वहीं दूसरी ओर दलितों में पैदा हुए आत्मसम्मान, वैचारिकी, ज्ञान, संघर्ष आदि को सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज की सरंचना जातिवादी रही है। समय के अनुसार इन परम्पराओं और संरचना में जो बदलाव आना चाहिए था वह संभव न हो सका। वैश्वीकरण और औद्योगिक विकास के कारण लोगों के रहन-सहन में तो बदलाव आ गया परन्तु सोच ज्यों की त्यों जड़वादी रही। जिसके कारण समाज की सरंचना जातीय आधार पर और अधिक जटिल होती चली गयी। जातिवाद का यह दानव भारतीय व्यक्ति के मन में इस तरह घर कर गया है कि दलित व्यक्ति चाहे जितनी उन्नति कर ले, अपनी काबलियत से आगे बढ़ जाए लेकिन जाति के आधार पर हमेशा शोषण का शिकार हो जाता है। इतना ही नहीं भारतीय समाज में यदि कोई दलित पढ़-लिख जाता है तो उसको लोगों का कटाक्ष सहन करना पड़ता है। जय जब बड़े साहब के पास जाता है तो बड़ा साहब बड़ी छोटी बात कहता है कि जय दसवीं में पढ़ता है तो क्या हुआ है तो मेहतर ही और आया भी मेहतरी के लिए है। सदियों से चली आ रही इस सरंचना को बदलने की आवश्यकता है। धर्म के नाम पर जो भी अमानवीय व्यवहार दलितों के साथ हुआ है उस व्यवहार में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। यदि जाति के आधार पर दलित की कुशलता को नकारा जाता है या फिर प्रताड़ित किया जाता है तो यह उचित नहीं है। इन सभी अन्यायों, शोषण, अत्याचार, भेदभाव से उपजी मानसिक शोषण की त्रासदी एक दलित को विद्रोह करने के लिए मजबूर करती है।

'विद्रोह' कहानी में जातिवाद की सताई हुई मनोदशा जय तथा उसके परिवार में चित्रित की गई है। सरकारी अफसरों और कार्य स्थलों पर किस प्रकार जातिवाद के नाम पर शोषण होता है को भली भांति उजागर किया गया है। दलित साहित्य में बागुल जी की भूमिका केवल एक लेखक के रूप में ही नहीं रही बल्कि एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में समाज में व्याप्त जातिवाद की मानसिकता को खत्म करने में भागीदारी निभाई।

इस प्रकार 'विद्रोह' कहानी के अध्ययन से हम दलित शोषण, वेदना और विद्रोह से परिचित होते हैं। हमें दलित साहित्य आंदोलन में बाबूराव बागुल जी का योगदान और स्थान का ज्ञान हुआ है। इसके अलावा उनके लेखन की वैचारिकी और साहित्यिक योगदान से

परिचित किया गया है। उनके अनुसार शोषण मुक्ति की दिशा में प्रत्यक्ष तथा वैचारिक संघर्ष एक सकारात्मक परिणाम लेकर आएगा।

8-10 vH;kl

1) आपने अब तक जो कहानियां पढ़ी हैं उनकी तुलना 'विद्रोह' कहानी से कीजिए।

2) आपको जय की सोच में और अन्य कहानियों के पात्रों की सोच में क्या फर्क महसूस होता है?

3) गैर दलित लेखकों द्वारा रचित कहानियों में तथा एक दलित कहानीकार द्वारा रचित चरित्रों में क्या समानताएं और असमानताएं देखने को मिलती है?

4) 'विद्रोह' कहानी की भाषा पर विचार कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

bdkbZ 9 vks·js pq#xu ejs---- % fo'ys"k.k vkSj eY;kdu

bdkbZ dh :ijs[kk

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 कोंकणी कहानी-संसार : सामान्य परिचय

9.3 कोंकणी कहानी लेखन में सक्रिय महिला कहानीकार और मीना काकोडकर

9.4 निःसंतान माता की यंत्रणा और उसका मातृत्व

9.5 मातृहीन बच्चे की मानसिक स्थितियाँ और बाल मनोविज्ञान

9.6 सामाजिक संस्कार और मान्यताएँ

9.7 कहानी का शिल्प

9.8 सारांश

9.9 अभ्यास

9-0 mís';

भारतीय कहानी के अध्ययन हेतु यह तीसरे खंड की नौवीं इकाई है। इससे पहले आपने विभिन्न भारतीय भाषाओं की प्रसिद्ध एवं कालजयी कहानियों की विशिष्टता, कलात्मकता और अंतर्वस्तु का विस्तार से अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई कोंकणी की बहुचर्चित कहानीकार मीना काकोडकर की 'ओऽरे चुरुंगन मेरे....' पर केंन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- कोंकणी कहानी जगत् का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे तथा कोंकणी की महिला कहानीकारों की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- निस्संतान मातृ हृदय की त्रासदी पर प्रकाश डाल सकेंगे/सकेंगी।
- मातृहीन बच्चे की मानसिक स्थितियों से अवगत हो सकेंगे/सकेंगी।
- मीना काकोडकर की मनोवैज्ञानिक विश्लेषण क्षमता तथा शिल्प कौशल से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- कोंकणी समाज में व्याप्त संस्कार एवं मान्यताओं को आप समझ सकेंगे/सकेंगी।
- ग्रामीण जीवन की विविध स्थितियों को रेखांकित कर सकेंगे/सकेंगी।

9-1 izLrkouk

आप जानते हैं कि 'ओऽरे चुरुंगन मेरे' कोंकणी भाषा में लिखित एक भारतीय कहानी है। इसकी लेखिका मीना काकोडकर हैं। मीना काकोडकर कोंकणी की ख्यातिलब्ध कहानीकार हैं। आपका जन्म गोआ के पोलोलम में 21 सितंबर, 1944 को हुआ था। आपके कहानी संग्रहों में, 'डोगर चन्वला' और 'सपन फुलाँ' ने अत्यधिक प्रसिद्धि पाई है। बच्चों पर आधारित तीन नाटक 'सत्कानत्लो जादूगर' की भी काफी चर्चा हुई है। आलोच्य कहानी बाल मनोविज्ञान पर आधारित है। इससे भी बढ़कर संतानहीन माता की ममता पर आधारित

है। इस कहानी में ग्रामीण जीवन के अनेक खंडचित्र भी अंकित हुए हैं। मीना काकोडकर को 'सपन फुलाँ' कहानी-संग्रह हेतु वर्ष 1991 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है! 'समकालीन भारतीय साहित्य' के जनवरी-मार्च 1992 वाले अंक में लीला गायतोंडे द्वारा अनूदित होकर 'ओऽरे चुरुंगन मेरे' पहली बार हिंदी में प्रकाशित हुई थी। उम्मीद है कि आपने यह कहानी पढ़ ली है। यदि किसी कारण से आप कहानी नहीं पढ़ पाये हैं तो सबसे पहले कहानी का पाठ कर लें ताकि कहानी की विशेषताओं को समझने में आपको किसी भी प्रकार की परेशानी नहीं होगी। कहानी-पाठ के पश्चात् इकाई का अध्ययन करना उचित होगा।

9-2 dksad.kh dgkuh-lalkj % lkekU; ifjp;

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में कोंकणी को 20 अगस्त, 1992 को शामिल किया गया। इससे कोंकणी साहित्य को नये आयाम मिले। लेकिन कोंकणी साहित्य पाँच सौ वर्षों से भी अधिक पुराना है। लोक कथाओं में कोंकणी का इतिहास और भी पुराना है। हजारों वर्षों से कोंकणी लोककथाएँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी से चली आ रही हैं। इनमें से कुछ लोककथाओं का अंग्रेजी में अनुवाद वी. एस. सुकतांकर, लूसीओ रोड़रीग आदि ने किया था। परंतु आधुनिक कोंकणी कहानी की शुरुआत शोण्णोई गोइम्बाब से मानी जा सकती है। शोण्णोई गोइम्बाब कोंकणी नवजागरण के अग्रदूत थे। उनकी पहली कहानी 'मोजी बा कोइम गेलि', 'नवम गोम' शीर्षक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी उनके संग्रह 'गोमांत–पानीसत' (खंड.1,1928) में संकलित हुई थी। 'मोजी बा कोइम गेलि' (मेरी माँ कहाँ गयी) में एक छोटा बच्चा बाबुलो की कहानी है जो अपनी माँ से अत्यधिक प्रेम करता था। बाबुलो नटखट था। उसकी माँ बीमार ग्रस्त होकर मर जाती है और बच्चे से छिपाकर उसका अंतिम संस्कार कर दिया जाता है। बाबुलो को यह कहकर सांत्वना दी जाती है कि उसकी माता ईश्वर के पास गई हुई है। लौट आयेगी जल्दी ही। बाबुलो उसकी प्रतीक्षा करता है। दीर्घ काल तक माता का पुनरागमन नहीं होता है तो बाबुलो देवी को खरी-खोटी सुनाता है। यहाँ भी उसे शांति नहीं मिलती है। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। अंत में बाबुला की भी मृत्यु हो गई। शिशु का माता के प्रति प्रेम, शैशवावस्था का यथार्थ चित्रण और शिशु की माता के बिना दुःखद स्थिति को कहानीकार ने अत्यंत मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है।

'अनवल्लम' (बकुल फूल) दूसरा कहानी संग्रह है जिसमें चौदह कहानीकारों की रचनाएँ संकलित हैं। कहना न होगा कि इन कहानियों में करवार, मंगलूर आदि का जन-जीवन चित्रित हुआ है। गोवा की रीति-नीति, चाल-चलन, आचार-विचार आदि का भी कोंकणी कहानियों में जीवंत चित्रण हुआ है।

चंद्रकांत केणी मराठी तथा कोंकणी के प्रसिद्ध लेखक हैं। चंद्रकांत ने मराठी में दैनिक 'राष्ट्रमत' और कोंकणी में 'सुनापरांत' का संपादन भी किया था। उनकी कहानियाँ सीधी सरल रेखा की भाँति हैं। सहज सरल भाषा में सार्वजनिक विषयों पर चंद्रकांत की कहानियाँ आधारित हैं। जीवन-यथार्थ के कुछ चित्रों को अत्यंत विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करनेवाले चंद्रकांत केणाी को 1988 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है। 'गुपित', आपकी पहली कहानी है जो 1995 में प्रकाशित हुई थी। 'भूइँ चाँफी', धतोरी ओज़न जिएताली', 'आशाढ़ पाँवल्ली', 'ओलमी' और होंकोल पौन्नी' आदि आपके कहानी–संग्रह हैं।

लक्ष्मणराव सरदेसाई ने मराठी में सात सौ से भी अधिक कहानियाँ लिखी हैं। आपकी कुछ ही कहानियाँ कोंकणी में उपलब्ध हैं क्योंकि पचास वर्ष की अवधि पार करने के बाद आपने कोंकणी में लिखना प्रारंभ किया था। 'संतू हलेलम होडोप' (संतू नाई का बक्सा) और फोलर (लाईट हाउस) आपकी अन्यतम कहानियाँ है।

दामोदर मौज कोंकणी के ख्यातिलब्ध कहानीकार हैं। दामोदर की कहानियों में कोंकणी समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों का मनोज्ञ चित्रण है। प्रत्यक्ष अनुभव को आधार बनाकर दामोदर मौज ने 'गन्थन' (धागे में मछलियाँ), 'जागरणम', 'सुद' (प्रतिशोध) जैसे कहानी-संग्रह और लघु उपन्यास लिखे इस रचयिता ने बच्चों के लिए भी कहानियाँ लिखी हैं जो 'कन्नी एका खोमसाची' (कमीज की कहानी) कहानी-संग्रह में संकलित हैं। दामोदर मौज क्यों लिखते हैं? इसका जवाब उन्हीं के शब्दों में –"मैंने अधिक नहीं लिखा है। मेरी वृत्ति मेरे लेखन में बाधक बनकर आती है। लेकिन जब कभी मैं लिखने को बाध्य होता हूँ। प्रेरित होता हूँ मैं लिखता हूँ और लेखन मुझे सर्वाधिक आनंद प्रदान करता है। लेखन से मुझे न केवल आनंद प्राप्त होता है लेकिन जीवन का उद्देश्य भी पूर्ण होता है। मैं जीवन में समन्वय की खोज करता हूं......'" (ए हिस्ट्री ऑफ कोंकणी लिटरेचर–मनोहर राय सरदेसाई, पृ. 190) दामोदर मौज की एक कहानी है 'अशोक' अर्थात् शोकरहित। जब उसकी माँ की मृत्यु होती है वह नहीं रोता है। पिता की मृत्यु पर भी नहीं रोता। उसकी केवल एक ही इच्छा है तस्वीरें खींचना। लेकिन किसी ने भी उसकी कला को नहीं समझा। उसकी कला की प्रशंसा भी नहीं की। अंत में एक बड़ा कलाकार उसकी कला को महत्व देता है। अशोक को एक बहुत बड़ा पुरस्कार प्राप्त होता है वह जीवन में सिर्फ एक बार हँसता है। 'सदानंद', 'तोसो हन भिएना' (यद्यपि मैं भयभीत नहीं हूँ) 'अनि हन परतोलम' (और मैं लौट आया) आदि आपकी उल्लेखनीय कहानियाँ हैं।

फेलीको कारदोसो के कहानी-संग्रह 'तूफान' ने कोंकणी कहानी जगत् को नई दिशा प्रदान की। इस कहानीकार ने कोंकणी कहानी रोमन लिपि में लिखी है। लंबे काल के लिए गोवा पुर्तगाली प्रभाव में रहा। फेलीको कारदोसो उस प्रभाव से कोंकणी कथा को मुक्त करने का प्रयास करते हैं। उनकी भाषा परिमार्जित है और वर्णन मनोज्ञ है। नाटकीयता इनकी कहानियों की एक बड़ी विशेषता है।

पुण्डलिक नाईक की कहानियाँ गोवा के ग्रामीण जीवन की आशा-आकांक्षाओं, स्वप्नों और जीवनगाथाओं का चित्रण करती हैं। उनकी कहानियाँ आंचलिक होते हुए भी वैश्विक हैं। इनकी कहानियों में मिट्टी की महक है तो गोबर की बू भी। नारियल के पेड़, झुरमुट, पके धान के खेत से आनेवाली खुशबू, मछुआरों की जीवन शैली 'पिक्षान्तर', 'मथोई' आदि संकलनों में विशेष रूप से चित्रित है।

कोंकणी कहानी के विकास में गजान न जोग का 'रुद्र', ए.एन. माम्ब्रो का 'पणजी आतम हतारी जला', दत्त नाईक का 'एक एक्सिल', ओलिविनो, गोम्स का 'मन वोदोत्रा वोदोना', रामकृष्ण जुवारकर का 'आमचेओ खोबरो' (हमारी कहानियाँ), एन. शिवदास का 'गुलशन' (हार), महाबलेश्वर शैल का 'कोलसुनी', तोमाजिनो कार्डोसो का 'जेलो' आदि के सैकड़ों कहानी संग्रहों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

9-3 dksd.kh dgkuh y[ku esa lfØ; efgyk dgkuhdkj vkSj ehuk dkdksMdj

सच है कि कोंकणी कहानी जगत् में महिला कहानीकारों की संख्या अत्यल्प है। परंतु इन महिला कहानीकारों की रचनाधर्मिता के महत्व को ठुकराया नहीं जा सकता है। मीना काकोडकर के अलावा शीला कोलांबकर, जयमाला दानाइत, हेमा नाईक, जयन्ती नाईक आदि ने उल्लेखनीय कहानियाँ लिखकर कोंकणी कथा-संसार को समृद्ध किया है। आइए, इन महिला कहानीकारों की कथा दुनिया के सामन्य तत्वों का परिचय प्राप्त करे लें।

शीला कोलांबकर अपने चतुर्दिक के वातावरण से विषय चुने हैं। उनकी कहानियों में प्रकृति के प्रति एक लगाव भी पाया जाता है। अपने चारों ओर की दुनिया को वे बच्चे की नज़र से भी कभी-कभार देखती हैं। 'मैगी' शीर्षक कहानी इसका उदाहरण है। 'मैगी' एक छोटी लड़की है जिसकी घर में तथा स्कूल में उपेक्षा होती है। इसलिए वह एक काल्पनिक दुनिया का सृजन करती है जहाँ उसे प्रेम तथा सम्मान प्राप्त होने की कल्पना करती है। 'खेल' तथा 'बैबी' शीला कोलांबकर की अन्य कहानियाँ हैं। आपका एक कहानी संग्रह 'ओली सांझ' भी प्रकाशित हुआ है। उनकी कई कहानियों में गोवा की प्राकृतिक सुषमा के चित्रण मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे कहानीकार कम और चित्रकार अधिक हैं। उनकी कहानियों में कोंकणी भाषा का सौंदर्य बार-बार उद्‌घाटित हुआ है।

जयमाला दनाईत ने 'कवासो' (केतकी फूल) (1978) में घरेलू समस्याओं को आधार बनाया है। दैनंदिन जीवन की घटनाओं और समस्याओं को नैसर्गिक तथा सहज, सरल भाषा-शैली में प्रस्तुत करने की कला जयमाला के पास है। 'प्रॉब्लेम' शीर्षक कहानी में कहानीकार ने नौकरी से उत्पन्न समस्याओं के चलते शिशु की असहायता और उसके अकेलेपन की दुःखद गाथा को चित्रित किया है। घरेलू नौकराइन की मर्जी पर शिशु को छोड़ा जाता है। यह शिशु बाद में चिड़चिड़ा और असंवेदनशील हो जाता है। 'अंकवार मोरी' शीर्षक कहानी में अविवाहित माता की कठिनाइयाँ चित्रित हैं। अन्तर्जातीय विवाह, दहेज-प्रथा आदि को अपनाकर भी जयमाला ने कहानियाँ लिखी हैं। आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि जयमाला की तमाम कहानियाँ पारिवारिक अथवा सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं। जयमाला की कहानियाँ पाठकों को अत्यधिक प्रभावित करती हैं और आकर्षित भी क्योंकि इनमें स्वाभाविकता और विश्वसनीयता बनी रहती हैं।

गोवा में नारीवादी आंदोलन की नेत्री हेमा नाईक की कहानियाँ 'पसल' शीर्षक संग्रह में संकलित हैं। यह कहानी-संग्रह बीसवीं शताब्दी के नब्बे के दशक में प्रकाशित हुआ। हेमा नाईक की कहानियाँ का सरोकार नारी है, सिर्फ नारी। इसलिए यह उनकी कहानियों की सामर्थ्य है तो सीमा भी। उनकी कहानियों में कथानक की तुलना में चरित्र-चित्रण को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। उनकी कहानियों में कृत्रिमता का अभाव है। उनकी साहित्यिक चेतना सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना से ओतप्रोत है। उन्होंने नारी के दुःख, दर्द और उस पर हो रहे अत्याचारों की संवेदनशील तस्वीर पेश की है। अन्याय, अत्याचार और शोषण से नारी की दुर्दशा देखकर यह कहानीकार उग्र हो उठती हैं। 'परसूम परतून फल्टा' ऐसी ही कहानी है। लोगों की बुरी जुबान को बंद करने के लिए एक विधवा युवती अपने पति के मित्र से विवाह कर लेती है। नारी-अस्मिता का स्वर भी इस कहानी में अभिव्यक्त हुआ है।

जयंती नाईक का कहानी-संग्रह है 'गर्जन'। जयंती की नारी चेतना गर्जन करती है। नारी अपने सामाजिक अधिकारों और अपनी शक्ति के प्रदर्शन के लिए घनघोर गर्जन करती है। यह गर्जन अमीरों के विरुद्ध गरीबों का है। शोषकों के विरुद्ध शोषितों का है। कमजोर का ताकतवर के विरुद्ध गर्जन है। 'गर्जन' शीर्षक कहानी संग्रह में नारी, दलित, पीड़ित, शोषित वर्ग के प्रति कहानीकार की संवेदनशील दृष्टि है। जयंती के कथा-कौशल में कभी-कभी अभिव्यक्ति विचारों का साथ नहीं दे पायी है। बावजूद इसके, जयंती की कहानियों में अपार संभावनाएँ मौजूद हैं। गोवा के ग्रामीण जीवन के कुछ अविस्मरणीय चित्र अंकित करने में जयंती नाईक को अभूतपूर्व सफलता मिली है।

कोंकणी की महिला कहानीकारों में मीना काकोडकर नाम अन्यतम है। इस इकाई के प्रारंभ में उनका साहित्यिक परिचय प्रदान किया जा चुका है। यहाँ इतना कहा जा सकता है कि मीना काकोडर ने कोंकणी कहानी को नये विषय तो दिये ही, नये परिप्रेक्ष्य भी प्रदान किये।

आपकी कहानियों ने कोंकणी कथा-जगत् को नया स्पंदन प्रदान किया है। 'डोगर चन्वला' कहानी-संग्रह की शीर्षक कहानी में शहरी कन्या विवाह के बाद गाँव में आती है। वह सोचती है कि शहर से दूर होकर वह ग्रामीण वातावरण में अपने को शामिल नहीं कर पायेगी, उकता जायेगी। परंतु एक अशिक्षित ग्रामीण नटखट लड़के से उसका संवाद होता है जो प्रकृति के प्रेम के प्रति दत्तचित्त था। कालांतर में उस कन्या को गाँव छोड़कर जाना पड़ता है तो उसकी आंखों से अश्रुधारा बहती है। उसे अत्यधिक कष्ट होता है गांव के छोड़ने का। दरअसल इस कहानी में ग्राम्य प्रकृति का जो उत्कर्ष चित्रण है उसे देखकर लगता है कि गद्य में लिखी गई यह एक सच्ची कविता है। कहानीकार ने अपनी अन्य कहानियों से नैसर्गिक भावुकता से भी रू–ब–रू कराया है। अपनी सम्मोहक शैली में कहानीकार ने मानव जीवन के विविध परिप्रेक्ष्यों को चित्रित किया है।

''ओऽरे चुरुंगन मेरे.........'' एक हृदय विदारक कहानी है। इसमें निस्संतान माता का ममत्वबोध है। वह अपने भतीजे को उसकी मां की मुत्यु के बाद अपने पास ले आती है और हृदय का संपूर्ण ममत्व उस पर उड़ेल देती है। लेकिन, कुछ ही दिनों बाद वह लड़का अपनी मौसी को दुःख के दरिया में धकेलकर वहां लौट जाता है जहां से वह आया हुआ था। निस्संतान माता के यंत्रणादग्ध हृदय का मार्मिक चित्रण करने में मीना काकोडकर को महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

निस्संदेह कहा जा सकता है कि मीना काकोडकर की कहानियां पाठकों को आंदोलित करती हैं और उद्वेलित भी। आपकी कहानियों में प्रकृति और मनुष्य परस्पर अभिन्न रूप से समाहित हैं। कहानी के शिल्प के धरातल पर मीना काकोडकर की कहानियां सार्थक प्रतीत होती हैं। आपकी कहानियों से न केवल कोंकणी कहानी बल्कि भारतीय कहानी भी समृद्ध हुई है। इसलिए, मीना काकोडकर की कहानियों ने खास पहचान बनाई है। कोंकणी कहानी-संसार में मीना काकोडकर का स्थान अति महत्वपूर्ण है। आइए, अब हम 'ओऽरे चुरुंगन मेरे........' शीर्षक कहानी की परतों को खोलने का प्रयास करें।

9-4 fu%lrku ekrk dh ;=.kk vkj mldk ekrRo

आपको मालूम है कि भारतीय समाज में सदियों से निः संतान माता को अभिशप्त माना गया है। पुराणों, उपनिषदों आदि ग्रंथों में इसके प्रमाण मिल जाते हैं। संतानविहीन माता को कभी कुल की कलंकिनी कहा गया तो कभी पिशाचिनी। नारी जीवन की सफलता और सार्थकता उसके मातृत्व में है–ऐसा भी माना जाता है। समीक्ष्य कहानी में 'मौसी' के माध्यम से माता न बन पाने की यंत्रणा को रूपायित किया गया है। भारतीय नारी की ममता उसकी सर्वश्रेष्ठ विशेषता है। मौसी उस ममता को अपनी दीदी के पुत्र पर दोनों हाथ लुटाती है, मातृहीन बच्चे पर दयार्द्र होकर उसे अपने पास ले आती है। उसे तमाम सुख-सुविधाएं पहुंचाती है। कहीं लड़का ऊब न जाए, इसका ख्याल करते हुए 'तब मौसी अपना काम छोड़कर मेरे साथ खेलती थी'..........मौसी के साथ खेलने में बहुत मजा आता था। मैं ठगा भी लूं, तो मौसी की समझ में कुछ नहीं आता था। पूरे अंटे मेरे हो जाते, तब वह मुझे गोद में बिठाकर, 'बड़ा होशियार है मेरा राजा बेटा', ऐसा कहकर हंसती थी।'' इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि मौसी कितनी सीधी-सादी, भोली-भाली और सहज हृदय की थी। उसने अपनी ओर से बच्चे की परवरिश करने में कोई कोताही न बरती थी। बच्चे के साथ रहकर उसे मानो सारे स्वर्गीय सुख प्राप्त होते थे। उसे स्कूल में भेजते समय आंगन में खड़ी रहकर देखा करती थी। बच्चे के लालन-पालन, उसके साथ खेल-कूद और उसके संस्पर्श से मौसी का मातृत्व साकार हो उठा था। उसने भुला दिया था कि बच्चा उसका अपना नहीं उसकी दीदी का है।

मौसी अपने मातृत्त्व को लेकर काफी चिंतित रहती है। छोटी से छोटी घटना को लेकर वह आशंकाग्रस्त रहती है। बच्चे रोज स्कूल जाते समय मोड़ पर आम के पेड़ के पास पहुंचते ही पीछे मुड़कर देखा करता और हाथ हिलाया भी करता था। इस पर मौसी परम प्रसन्न रहा करती थी। बालसुलभ आचरण के चलते कभी बच्चे ने हाथ हिलाना भुला दिया। इससे मौसी बिल्कुल दु:खी हो जाती है। तमाम आशंकाओं से घिर जाती है। बच्चा रघु स्कूल से लौटा तो हाथ न हिलाने का कारण पूछती है। कहानीकार ने मौसी के माध्यम से कहलवाया है–''ऐसे कैसे भूल गया? तुझे तो मुझसे अपनापन ही नहीं है। मैं ही तुझ पर जान देती हूं...।'' इतने में ही मौसी की आंखें भर आती हैं दरअसल, मौसी के उपर्युक्त कथन में ममत्व घुला हुआ है। यह मीठी शिकायत है तो प्यार का इजहार भी। ध्यान से देखा जाए तो उसके अंदर मातृत्व को लेकर कहीं-न-कहीं असुरक्षा का भाव भी है। इसलिए उस रात को रघु को मौसी ने चुरुंगन की कहानी सुनाई थी। इस तरह की कहानियां लोक-कथा के रूप में सदियों से चली आ रही हैं। उप-कहानी मूल कथा को तीव्रता प्रदान करती है। चुरुंगन और मौसी की कहानी के माध्यम से रघु और मौसी संकेतित हैं। चुरुंगन की मौसी की यंत्रणा रघु की मौसी की यंत्रणा बनकर प्रकट होती है। प्रासंगिक कथा बिल्कुल छोटी सी है। लेकिन उसमें पैनापन है। मार्मिकता है और हृदय को द्रवित करने वाली भी है। चुरुंगन यानी पक्षी-शावक की कहानी आपकी स्मृति में होगी ही। फिर भी, उसे यहां प्रस्तुत करना समुचित होगा। लेखिका के शब्दों में कहानी प्रस्तुत है–''एक था चुरुंगन एकदम नन्हा सा। एक दिन उसकी मां मर गई। चुरुंगन घोंसले में अकेला रह गया। की एक मौसी थी। उसने बड़ी ममता से उसे अपने पंखे तले सहारा दिया। पाला.....पौसा.....। चुरुंगन की मौसी उसका पालन–पोषण करने लगी। मौसी उसे बहुत प्यार करती थी। वह उसे अपना ही बच्चा समझती थी। मौसी ने उसे उड़ना सिखाया। बच्चे ने पंख फैलाए। वह अकड़ से उड़ने लगा। मौसी खुशी से फूली न समाई। एक दिन चुरुंगन घोंसले से बाहर निकला। उड़कर दूर-दूर चला गया। मौसी चुरुंगन को भूल न सकी। वह उसकी राह देखती रही। और उस चुरुंगन की याद में मौसी घोंसले में रोती रहती थी।''

स्पष्ट है कि मौसी अपनी आप बीती सुना रही है। चुरुंगन की मौसी की कहानी एक बहाना है अपने दास्ताँ सुनाने का। ''वह मुई थी बड़ी बदनसीब।'' बदनसीबी का कारण है निस्संतान होना। लोक-कथा में रघु की मौसी ने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। चुरुंगन उड़कर चला गया चुरुंगन वापस आ सकता है। हृदय की प्यास और ममत्व की भूख मिट सकती है। तमाम निराशाओं और यंत्रणाओं के बीच आशा और आनंद का संधान करना, यह भारतीय दर्शन है और भारतीयता का मूलमंत्र भी। चुरुंगन की कहानी सुनाते समय मौसी का रोना, कहीं–न–कहीं इस बात का द्योतक है कि मौसी का हृदय के किसी कोने में भावी विरह की आशंका घनीभूत हो रही थी। मौसी की स्थिति वैसी न हो जाए जैसी चुरुंगन की मौसी की थी। तभी तो कहानीकार ने वर्णित किया है–''कहानी सुनाते-सुनाते मौसी खुद ही रोने लगीं। उसका रोना देखकर मैं भी रोने लगा मौसी ने मुझे गोद में लिटाया और थपथपाते हुए धीमे स्वर में वह गाने लगी।'' 'ओऽरे चुरुंगन मेरे/कब आएगा तू/प्यार करती हूँ तुमसे मैं/ पर भूल गया रे तू।''

आपको मालूम है कि मौसी ने पराये को पूर्णतया अपना बना लिया था। ममत्व से मातृत्व को भर दिया था। उसे सख्त धक्का पहुंचता है। यूं कह सकते हैं कि उस पर वज्राघात होता है जब रघू को लेने उसके पिता अचानक आ पहुंचते हैं। इस बात पर कि 'रघु को लेने आया हूं' मौसी को काटो तो खून नहीं। मौसी की इस स्थिति का चित्रण कहानीकार के शब्दों में–''मौसी के हाथ का सूप जमीन पर गिरा। उसमें से चावल सब जगह बिखर गये। मौसी बिल्कुल गई बीती। सूप भी ठीक तरह पकड़ना नहीं जानती।'' अंततः कहा जा सकता है कि आलोच्य कहानी में मीना काकोडकर ने निस्संतान मातृ हृदय की त्रासद स्थितियों को अत्यंत मर्मस्पर्शी ढ़ग से चित्रित किया है।

9-5 ekr`ghu cPps dh ekufld fLFkfr;k¡ ;k cky euksfoKku

'ओऽरे चुरुंगन मेरे' कहानी की प्रारंभिक पंक्ति है–''मां की मौत को दो दिन गुजरे थे।'' बच्चे का नाम है रघू। बमुश्किल आठ बरस का होगा। इस बच्चे की स्वाभाविक इच्छाओं और प्रतिक्रियाओं का कहानी में चित्रण किया गया है। यहां आपको बताना अनुचित न होगा कि कहानी में मातृत्व की भावना को महत्व दिया गया है लेकिन इस प्रक्रिया में मातृहीन बच्चे के मनोविज्ञान को भी बड़ी शिद्दत के साथ चित्रित किया गया है। रचनाकार की मनोवैज्ञानिक सूझबूझ का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही उसके मनोवैज्ञानिक परिचय का भी पता चलता है।

बच्चे के लिए मां सबकुछ होती है। पिता के साथ वैसा लगाव, जुड़ाव या प्रेमभाव बच्चे का नहीं हो पाता है जितना कि माता के साथ होता है। मातृहीन बच्चे के लिए सबसे बड़ा सहारा होता है मां की स्मृतियों में डूबा रहना। मां के साथ बिताये गये एक-एक पल की स्मृति तरोताजा हो उठती है। भले ही रघू पड़ोस की सुरंग की गोद में हो अथवा पिता के बगल में उसे तो मां की याद ही आती है। वह वर्तमान की तुलना अतीत से करता है। कहना न होगा कि अतीत सुखद तो था ही, भविष्य को संवारने वाला भी हुआ करता है। पिताजी को मां की याद में रोते हुए देखकर बच्चे का रोना सहज स्वाभाविक है। पिताजी उसे सहलाते हैं तो रघू को अपनी मां के सहलाने की याद आती है। अगर मां से भी अधिक प्रेम मौसी बच्चे को करे तो क्या मौसी मां बन सकती है? बच्चे के लिए मां का स्थान कोई दूसरा नहीं ले पाता है। मां, मां होती है और मौसी, मौसी ही रहती है। मौसी प्यारी होती है जरूर लेकिन गाली-गलौज, मार-पीट, डांट-फटकार के बावजूद बच्चे के लिए मां सर्वाधिक प्यारी होती है। इस बालसुलभ भावना को मीना काकोडकर ने कहानी में अनेक स्थलों पर चित्रित किया है–

1) ''मौसी के कपड़ों से फूलों की सी खुशबू आ रही थी। मां के कपड़ों से हमेशा धुएं की गंध आती थी। पर मेरा मन चाहा कि मौसी के कपड़ों से धुएं की ही गंध आती तो कितना अच्छा होता।''

2) ''मौसी जरा भी मां जैसी नहीं दिखती। मेरी मां सांवली थी, तो मौसी थी गौरी।''

3) ''मां की बगल में सोते हुए धुएं की अच्छी सी गंध आती थी। सुरंग की साड़ी से भी वही खुशबू आती है, जैसी कि मां की साड़ी से आती थी। उस गंध का चिंतन करते हुए मैं मौसी की बगल में घुसा।''

4) ''मौसी सुर-सुर कर रस्सी खींच के गागर से कुएं का पानी निकालकर मेरे सर ऊंड़ेल देती। पूरे बदन में साबुन लगाती। घर पर मैं अकेला ही नहा लेता था। मैंने मां को कभी मुझे नहलाने नहीं दिया। मैं क्या अब नन्हा सा बच्चा था? पर मौसी सुने तब न?''

5) ''मुझे लगता था कि मैं मौसी को भींच लूं। पर मैं कुछ नहीं करता था। बेचारी मां को मैंने कई बार भींचा था।''

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चा अपनी मां से बेहद प्रेम करता है। मां का स्थान कोई दूसरा नहीं ले पाता है। उसके दिलो-दिमाग में मां की स्मृतियां भरी रहती हैं। बात-बात में वह अपनी मां की तुलना दूसरों से कर लेता है और मां का श्रेष्ठता बोध सिद्ध करता है।

मौसी ने रघू को सौतेली मां की बहुत-सी कहानियां सुनाई थीं। सौतेली माताएं बुरी होती हैं। अपार कष्ट अपने सौतेले बच्चों को देती हैं। मारती-पीटती भी हैं। ऐसी बातें रघू ने सुन

रखी थीं। इधर पिताजी और मौसी के वार्तालाप सुनकर रघू ने समझ लिया कि उसके पिताजी ने दूसरी शादी कर ली है। तब–''यह सोचकर मुझे रोना आया और मां की याद में हिचकियों पर हिचकियां भरता रहा।'' ऐसा प्रतीत होता है कि कहानीकार ने आंखों देखा हाल ही नहीं बल्कि अंगों से निभाई गई स्थितियों का चित्रण किया है, बालक के हृदय की गहराई में पैठकर उसकी मानसिक स्थितियों का खुलासा किया है। बच्चे चंचल होते हैं तो उनके मानसिक भाव भी तो स्थिर नहीं होते। सिसकियां भर-भर कर रोने वाले रघू को जैसे ही पता चलता है कि पड़ोस में रहने वाली और रघू को बहुत चाहनेवाली सुरंग ही उसकी 'सौतेली मां' है तब बच्चे की मानसिक स्थिति तत्काल बदल जाती है–''कौन है वह?

सुरंग......।

सुरंग? मेरी आंखें चमक उठीं। हटो। सुरंग भी कभी सौतेली मां हो सकती है भला? वह कितनी अच्छी है! उसकी बगल में जब सोया था, तब मुझे लगा था कि जैसे मां की गोद में सो गया हूं।''

इसके बाद बच्चा फक्र से हंसता है। कूदकर पिताजी के पास पहुंचता है और मौसी को छोड़कर पिताजी के साथ चलने को तैयार हो जाता है।

'क्षणे रुष्टा, क्षणे तुष्टा' अर्थात् क्षणभर में रूठना और फिर मान जाना, संतुष्ट होना, यही तो बालक का स्वभाव होता है। बालसुलभ मनोभाव भी।

मौसी को विश्वास नहीं हो पा रहा था कि रघू उसे छोड़कर अपने पिता के साथ वापिस चला जायेगा। इसलिए उसने पूछा–''रघू, क्या तू सचमुच जाएगा?'' इसकी प्रतिक्रिया जो रघू पर होती है उसका चित्रण करते हुए कहानीकार लिखती हैं–''सचमुच याने? पगली मौसी :क्या पूछती है। जानती ही नहीं। मैंने सिर हिलाया।'' रघू के मन में एक बात घर कर चुकी है कि वह अपने पिता के साथ अपने गांव में स्वतंत्र रहेगा, खूब मजे में रहेगा। सबसे बड़ी बात है कि अपने मित्रों के साथ रहेगा। मौसी के यहां सारी सुख–सुविधाएं तो हैं लेकिन एक बेगानापन महसूस भी करता है रघू। ऐसी बात नहीं है कि मौसी के यहां उसे रहना पसंद नहीं है। लेकिन उसे अधिक पसंद है पिताजी के साथ चलकर मछलियां पकड़ना। बेंदित और शिरी बालसखाओं को ढ़ेर सारे समाचार देना है। इस कल्पना में वह परम प्रसन्न है। इसलिए रघू से जब पूछा जाता है ''यहां तुझे अच्छा नहीं लगता?'' तो रघू बिना किसी लाग-लपेट के सीधा जबाब देता है–''यहां मुझे अच्छा लगता था। पर पिताजी के साथ और भी अच्छा लगेगा।'' ध्यान दिया जाना चाहिए कि बच्चे का हृदय कच्ची मिट्‌टी के समान होता है जिसे मनचाहा रूप प्रदान किया जा सकता है। बालसुलभ चेष्टाओं से हम बाल मनोविज्ञान को उद्‌घाटित होते पाते हैं जिसे लेखक ने बड़े सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। इस मनोवैज्ञानिक उद्‌घाटन में लेखक ने सैद्धान्तिक जटिलताओं को न अपनाकर बच्चे की चेष्टाओं और क्रियाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। रघू के व्यवहार से उसकी मनस्थितियां भी स्पष्ट होती हैं। बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से 'ओरे चुरुंगन मेरे.... एक सफल कहानी है। मातृहीन बच्चे के मनोविज्ञान का सफल रूपायन करने वाली कहानी है।

मीना काकोडर मनोवैज्ञानिक कथाओं की सफल लेखिका है। वे घटनाओं के कोरे वर्णन को महत्व न देकर मानव के अंतर्मन की परत–दर–परत को उज्जीवित करने में अधिक रुचि लेती हैं। फलस्वरूप, इनकी कहानियों में भावात्मक गहराई होती है न कि मनोविज्ञान के सिद्धांतों की उबाऊ व्याख्याएं। मौसी हो या रघू– के घात-प्रतिघात, चित्त के परिवर्तनों एवं प्रतिक्रियाओं का अंकन सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

9-6 lkekftd lLdkj o eku;rk,¡

आलोच्य कहानी 'ओऽरे चुरुंगन मेरे....' की पृष्ठभूमि कोंकणी समाज है। परंतु यह कहानी कोंकणी समाज तक सीमित नहीं है। इस कहानी की जो संवेदना है उसका फलक अत्यंत व्यापक हो सकता है। संपूर्ण भारतीय समाज में निःसंतान माता और मातृहीन बालक के प्रतिनिधि बन सकते हैं मौसी और रघू। भारतीय समाज ही क्यों वैश्विक परिदृश्य में जहां भी मानवता जीवित होती है इसकी संवेदना व्याप्त हो सकती है। 'कपड़े से आनेवाली धुएं की गंध' से पता चलता है कि रसोई में लकड़ी से खाना बनता है। ग्रामीण वातावरण का भी भरपूर चित्रण मिलता है इस कहानी में। छोटे पुल पर रघू का पिताजी के साथ मछलियां पकड़ने जाना, आंगन में अंटो से खेलना, नदी में जाकर नहाना, झोपड़ी में जगह जगह पानी चूना, शनिवार के दिन बाजार में रस्सी बेचना, जुवांब की शराब की दुकान आदि संकेतों से ग्रामीण जीवन के चित्र ही मिलते हैं।

इस कहानी में सामाजिक संस्कार और मान्यताओं को भी कहानीकार ने बखूबी चित्रित किया है। मान्यता है कि घर से कहीं बाहर निकलते समय थोड़ी दूरी के बाद पीछे मुड़कर राह अगोरने वाले को हाथ हिलाने से अपनापन ज़ाहिर होता है। रघू एक बार हाथ हिलाना भूल गया तो मौसी को बहुत अधिक बुरा लगता है। यह मध्यवर्गीय संस्कार है। पीछे मुड़कर हाथ न हिलाने से मौसी समझ लेती है कि रघू का उसके प्रति कोई लगाव नहीं है। उसकी आंखें भर आती हैं।

एक दूसरा उदाहरण है–''मोगरू को चल बसे छः महीने भी नहीं बीते, और तुमने''। प्रसंग है रघू के पिता ने छः महीने के अंदर दूसरी शादी कर ली है। मान्यता है कि घर में किसी की मृत्यु हो तो लगभग साल भर कोई खुशी नहीं मनाई जाती है।

एक और प्रसंग है–सौतेली माता के प्रति समाज की सोच अत्यंत सीमित दायरे की होती है। यह जरूरी नहीं है कि सभी सौतेली माताएं अपने सौतेले बच्चों का कष्ट पहुंचावें। कुछ अच्छी या बहुत अच्छी भी होती हैं। लेकिन समाज की मान्यता भला कहां बदलती है? आठ बरस का बच्चा रघू पिता के साथ अपना गांव लौटते वक्त इतना खुश और मशगुल था कि वह हाथ हिलाना फिर भूल जाता है। कहानी के अंतिम दो वाक्य हैं–''आम के पेड़ के पास पहुंचने पर, पीछे मुड़कर, मौसी को हाथ हिलाना मैं भूल गया था। बिल्कुल भूल गया था....।''

9-7 dgkuh dk f'kYi

मीना काकोडर ने कोंकणी कहानी को नई दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस कहानी में उन्होंने विवरण बहुत कम प्रदान किये हैं जबकि अंतर्मन की परतों को उघाड़ने में अधिक रुचि दिखाई है। उनकी कहानियां प्रायः चरित्र प्रधान हैं। 'ओऽरे चुरुंगन मेरे....' भी एक चरित्र प्रधान कहानी है। इसमें विवाहित नारी यानी मौसी के निस्संतान होने की पीड़ा बार-बार व्यंजित हुई है। मातृत्व का सुख प्राप्त करने के लिए वह अपनी दीदी के बेटे को साथ ले आती है। उस पर तमाम स्नेह और ममता उड़ेलती है। लेकिन एक दिन उस बच्चे रघू के पिता अचानक आ पहुंचते हैं और रघू को अपने साथ ले जाते हैं। मौसी की स्थिति अत्यंत मार्मिक हो उठती है। उसके सारे अरमान लूट जाते हैं। कल्पनाएं चूर-चूर हो जाती हैं। यथार्थ से टकराकर उसकी इच्छाएं अतृप्त रह जाती हैं। मौसी के मातृ-हृदय की कसक और यंत्रणा का सार्थक चित्रण प्रस्तुत करने में कहानीकार कोई कसर नहीं छोड़ती हैं।

मीना काकोडकर भाषा का कुशल प्रयोग करती हैं। अपनी जादुगरी शैली में वह पाठक के हृदय को बांधे रखती है। शब्द-प्रयोग में अत्यंत कुशल इस कहानीकार ने अपने नैसर्गिक भावों को सार्थक ढंग से प्रस्तुत किया है। कोंकणी कहानी को नये क्षितिज प्रदान करने तथा कहानी के कथ्य में गहराई लाने में इस कहानीकार की भूमिका उल्लेखनीय रही है। इसकी कहानी भावुकता से ओतप्रोत है परंतु इस भावुकता में कला-नैपुण्य की कमी नहीं है। कहानी पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि मीना काकोडकर सिर्फ कहानीकार नहीं बल्कि एक उत्कृष्ट चित्रकार भी हैं। थोड़े शब्दों में ही बहुत कुछ कहने की कला इस महिला कथाकार को विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। नारी-जीवन के अंतर्मन की गहराई में पैठकर यह कहानीकार उसके दुःख, कष्ट और यंत्रणाओं को पाठक समाज के सामने ऐसे पेश कर देती हैं कि उस नारी के प्रति संवेदनशीलता उमड़ने लगती है।

इस कहानी की महत्वपूर्ण विशेषता है इसकी संवाद योजना। संवाद कतई लंबे नहीं हैं। कहीं-कहीं एक दो शब्दों से भी संवाद संपन्न हुआ है। कहानीकार ने पात्रानुकूल और प्रसंगानुकूल संवाद प्रस्तुत किये हैं। मौसी और पिता के संवाद हों या पिता और रघू के अथवा मौसी और रघू के, कहानीकार ने इन संवादों से न केवल कथा को आगे बढ़ाया है बल्कि पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को भी उज्जीवित किया है। सरल शब्दों, छोटे-छोटे वाक्यों, संक्षिप्त संवादों और बोलचाल की भाषा से कहानीकार ने अपने कथा-कौशल का सुंदर परिचय दिया है। कहानी का शीर्षक न केवल उपयुक्त है बल्कि प्रतीकात्मक भी है। चुरुंगन को पालने-पोसने के बाद उसका उड़ जाना और उसके प्रत्यागमन में पूरी जिंदगी गुज़ार देना मर्मस्पर्शी तो है ही, निस्संतान मातृ हृदय का जीवंत चित्रण भी है। कहानी का प्रारंभ, मध्य तथा अंत विशिष्ट बेधक है। अतः मीना काकोडकर के कथा-कौशल का प्रतिनिधित्व करने में यह कहानी सर्वथा सक्षम है।

9-8 Ikjka'k

मीना काकोडकर द्वारा लिखित 'ओऽरे चुरुंगन मेरे' कहानी के इस पाठ का आपने ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। आपने अध्ययन के दौरान यह अवश्य महसूस किया होगा कि कहानीकार इस कहानी के माध्यम से भारतीय समाज में संतानहीन माता की मनःस्थितियां हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। मीना काकोडकर एक महिला होने के चलते नारी के हृदय की अंतर्पीड़ा को भलीभांति रूपायित कर पाती हैं। यह कहानी मातृहीन बालक के अंतर्मन की परत–दर–परत को भलीभांति उघाड़ती भी है। छोटा बच्चा रघू के माध्यम से सुख-शांति के मायने क्या होते हैं, इस तथ्य को भी आलोच्य कहानी उजागर करती है। मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत इस कहानी में सामाजिक संरचना, सामाजिक संस्कारों एवं मान्यताओं को भी पिरोकर कहानी को नई अर्थवत्ता प्रदान की गई है। निष्कर्ष के तौर पर इतना कहा जा सकता है कि भारतीय नारी मातृत्व को ही जीवन की सार्थकता समझती है। आपने मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य 'साकेत' पढ़ा होगा। इसमें कैकेयी के मातृत्व का गौरवगान हुआ है। गुप्त जी की कैकेयी 'साकेत' के आठवें सर्ग में निवेदन करती हैं–

> ''थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
> जो कोई जो कर सके, कहे, क्यों चूके?
> छीने न मातृपद किंतु भरत का मुझसे
> रे राम, दुहाई करूं और क्या तुझसे?''

9-9 vH;kl

1) कोंकणी कहानी के उद्‌भव और विकास पर प्रकाश डालिए।
2) कोंकणी महिला कहानीकारों में मीना काकोडकर का स्थान निर्धारित कीजिए।
3) निस्संतान मातृ हृदय की त्रासदी को 'ओऽरे चुरुंगन मेरे.....– के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
4) ''मातृहीन बालक के अंतर्मन की गहराई को मीना काकोडकर ने सफलतापूर्वक अंकित किया है'' – इस कथन की समीक्षा कीजिए।
5) 'ओऽरे चुरुंगन मेरे.....' कहानी में अभिव्यक्त मध्यवर्गीय संस्कारों एवं मान्यताओं पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
6) मीना काकोडकर की कहानी 'ओऽरे चुरुंगन मेरे....' की संवेदना और उसके शिल्प का सविस्तार वर्णन कीजिए।

bdkÃ 10 fprk % fo'y"k.k vkj eY;kdu

bdkÃ dh :ijs[kk

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 लेखक का परिचय

10.3 कथानक

10.4 प्रमुख पात्र : जीवण-भारतीय जीवन शैली का वाहक

10.5 आधुनिकता : अपराधबोध और दायित्वबोध

10.6 शिल्प के आयाम

10.7 सारांश

10.8 अभ्यास

10-0 mÌs';

यह एम. ए. हिन्दी द्वितीय वर्ष के कहानी से संबंधित माड्यूल के पाठ्यक्रम "भारतीय कहानी " से संबंधित खंड-3 की 10वीं इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भारतीय भाषाओं की कहानी में गुजराती कहानी के बारे में जान सकेंगे/सकेंगी।
- आधुनिक गुजराती कहानी के विकास से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- गुजराती के महत्वपूर्ण साहित्यकार रघुवीर चौधरी के साहित्यिक अवदान से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- "चिता " कहानी के कथ्य एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- "चिता " कहानी में निहित परंपरा और आधुनिकता के संयोजन को समझ सकेंगे/सकेंगी।

10-1 çLrkouk

किसी रचना को व्यापक धरातल पर समझने के लिए उसके रचनाकार के बारे में जानना-समझना आवश्यक है। रचनाकार के साहित्यिक परिचय के साथ उसके परिवेश का ज्ञान रचना के वैशिष्ट्य को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब हम दूसरे भाषा-साहित्य की रचना का अध्ययन अनुशीलन कर रहे हों तब इस तरह के ज्ञान एवं परिचय की विशेष आवश्यकता पड़ती है। हम जानते हैं कि एक सांस्कृतिक विरासत और समान इतिहास होते हुए भी भारतीय भाषाओं के साहित्य में कई समानताओं के साथ कुछ भिन्नताएँ भी हैं। ये भिन्नताएँ उस समानता के बावजूद उस साहित्य को विशिष्ट बनाती हैं यही कारण है कि एक विषय पर अलग-अलग भाषाओं की रचनाओं की अभिव्यक्ति में बहुत कुछ वैविध्य होता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य, आधुनिक गुजराती साहित्य, आधुनिक बांग्ला साहित्य के स्वरूप और संवेदना के अंतर और वैशिष्ट्य के कारण परिवेश और साहित्यिक परंपरा में पड़े होते हैं।

यहाँ हम विषय को गुजराती कहानी तक ही और उसमें भी स्वातंत्र्योत्तर गुजराती कहानी तक ही सीमित रखेंगे। छठवें दशक में सुरेश जोशी ने गुजराती कहानी पर तार्किक टिप्पणी करते हुए उसकी कथ्य और शिल्पगत सीमाओं का उल्लेख किया था और "धरना ह्रास" की आवश्यकता पर जोर दिया। कहानी शिल्प को कविता की ओर मोड़ने और उसकी प्रतीकात्मकता एवं बिम्बधर्मिता को सराहा। उन्होंने कहानी में फैंटेसी और मिथक प्रयोग को भी प्रोत्साहन दिया। कहानी समीक्षा द्वारा ही नहीं बल्कि अपनी आधुनिक भावबोध की कहानियों द्वारा भी दिशा निर्देश दिया। उनकी सन् 1956 में प्रकाशित "गृहप्रवेश " कहानी से गुजराती में नयी कहानी का "श्रीगणेश " हुआ माना जाता है। रघुवीर चौधरी सुरेश जोशी की बाद की पीढ़ी के रचनाकार हैं जिन्होंने सुरेश जोशी के आधुनिकतावादी आन्दोलन के सकारात्मक पक्षों को रचनात्मक धरातल पर स्वीकार किया, लेकिन उनके आधुनिकतावादी दृष्टिकोण में निहित सामाजिक निरपेक्षता को अस्वीकार करते हुए इस प्रवृत्ति का विरोध किया। "चिता" कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन आधुनिक गुजराती कहानी के परिप्रेक्ष्य में करना अधिक समीचीन होगा। लेकिन इससे पहले हम रघुवीर चौधरी का साहित्यिक परिचय जानेंगे।

10-2 y[kd dk ifjp;

रघुवीर चौधरी (5 दिसम्बर, 1938) उत्तर गुजरात के एक छोटे-से गाँव–बापूपुरा में एक किसान परिवार में जन्मे थे। बाबा और पिता के इतिहास-पुराण के वाचिक ज्ञान एवं भजन-मंडली के सत्संग द्वारा उनका बचपन एवं किशोर जीवन संस्कारित हुआ। प्राथमिक और मैट्रिक तक की शिक्षा उन्होंने समीप के कस्बे माठासा में पाई थी, जहाँ उन्हें डॉ. भोलाभाई पटेल जैसे शिक्षक का सानिध्य एवं प्रेम मिला जिसने उनकी साहित्यिक अभिरुचियों को विकसित एवं परिष्कृत किया। गुजराती के महत्वपूर्ण ग्रंथों एवं संस्कृत के कई ग्रंथों का अध्ययन और अनुशीलन उन्होंने उच्च शिक्षा लेने के पूर्व ही कर लिया था। वे उच्च शिक्षा के लिए अहमदाबाद के सेंट जेवियर्स कॉलेज आए। यहाँ अपनी साहित्य प्रीति और प्रतिभा के कारण वे डॉ रामदरश मिश्र के प्रिय शिष्य बन गए थे। रामदरशजी ने शिष्य रघुवीर के साथ की पहली मुलाकात को याद करते हुए लिखा है : "इतनी सादगी और अकुंठ भाव से यह युवक यहाँ आया, बिना किसी बनावट-दिखावट के वह मेरे प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर गया, बिना किसी लाग-लपेट के अपने को यहाँ रख गया। ऐसा लगा कि यह हमारी पहली भेंट नहीं थी, न जाने हम कब से एक-दूसरे को जानते थे और समय के बिन्दु पर आमने-सामने होकर हमारी अदृश्य पहचानें एक-दूसरे को देख रही थीं और मौन भाव से कह रही थीं– "हाँ, यही तो है वह।"

गुजरात विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त (1998) करने वाले रघुवीर चौधरी गुजराती साहित्य जगत में सातवें दशक में ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। उनका पहला उपन्यास "पूर्वराग" सन् 1964 में प्रकाशित हुआ था और गुजराती में सबसे अधिक प्रतिष्ठा पाने वाले उपन्यास "अमृता" (1965) को उन्होंने 27 वर्ष की आयु में लिखा था जिसमें अस्तित्ववाद और भारतीय दर्शन के माध्यम से "व्यक्ति के अस्तित्व के अमृत तत्व" को खोजने का प्रयास किया गया है। उपरवासी कथात्रयी (उपरवास, सहवास, अंतरवास) में अपने ग्राम अंचल को आधार बनाकर स्वतंत्रता के बाद के गुजरात के परिवर्तित ग्राम जीवन को चित्रित किया गया है। इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला था। गाँवों में समृद्धि बढ़ रही है लेकिन सामुदायिक भावना खत्म होती जा रही है। उपन्यास का मुख्य पात्र देवू अनुभव करता है : "गाँव में निरन्तर मानवता का रक्त प्रवाह घटता जा रहा है। सब कुछ स्वस्थ दिखाई देता है, फिर भी बीमार है। जाने-

अनजाने इस बीमारी को बढ़ाने के इलाज हो रहे हैं। " गाँव से शहर और अमेरिका तक जाने वाला लवजी गाँव में रहने को लालायित रहता है और जब रहने लगता है तो उसका मोहभंग होता है। वह महसूस करता है कि गाँव में अब नहीं रहा जा सकता। उन्होंने पौराणिक और ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं। गोकुल–मथुरा–द्वारिका (हिन्दी अनुवाद उपलब्ध) ,"रुद्रमहालय " एवं "सोमतीर्थ " के अतिरिक्त लावण्य, लागणी, एकलव्य, बे-कांठा बच्चे उनके चर्चित उपन्यास हैं। गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित रघुवीर चौधरी के साहित्य में मानव-मूल्यों को बचाने –विकसित करने का परोक्ष प्रयास मिलता है। यह भी उल्लेखनीय है कि कलावादी अभिरुचि के कारण गुजराती साहित्य जगत में इसे अच्छा नहीं माना गया।

रघुवीर चौधरी ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने साहित्य के लगभग सभी प्रकारों में समान रूप से लिखा है और प्रतिष्ठा सम्मान प्राप्त किया है। कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, रेखाचित्र, यात्रा वर्णन, निबंध, संस्कृति, धर्मचिंतन एवं समीक्षा आदि क्षेत्रों में उनका विशेष योगदान है। उनकी कुछ विशिष्ट कृतियाँ निम्नलिखित हैं :

कविता : तमसा, वहेता वृक्ष पवनमां, फुटपाथ अने शेडो, बचावनामुं (लंबी कविता)

नाटक : अशोकवन, झूलता मिनारा, सिकंदर सानी, नजीक।

रेखाचित्र : सहरावी भब्यता, तिलक करें रघुवीर

यात्रा वर्णन : बारीमांथी ब्रिटेन, तीर्थभूमि गुजरात, चीनभणी

निबंध : पुनर्विचार, भृगुलांछन, मुद्दानीवात, प्रेम–अने काम

समीक्षा : अद्यतन कविता, वार्ताविशेष, गुजराती नवलकथा (राधेश्याम शर्मा के साथ)

कहानी : आकस्मिक स्पर्श, गेरसमझ, बहार कोई छे, नंदीघर, अतिथिगृह, मंदिरनी पछीते, दशनारी चरित

रघुवीर चौधरी के साहित्य में शहर और गाँव जीवन के बीच द्वैत नहीं है। गुजराती के वे ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने गाँव और शहर के जीने को रचनाओं का आधार बनाकर अपने अनुभव की व्यापकता का प्रमाण दिया है। वे शहर में रहते हुए गाँव से, खेत से और अपने परिवेश से जीवंत संबंध रखते हैं। कलात्मक सजगता के साथ सामाजिक सरोकारों के प्रति उनका झुकाव रहा है। डॉ. भोलाभाई पटेल ने इस विशेषता को इन शब्दों में व्यक्त किया है : "रघुवीर चौधरी के पास एक विशाल सामाजिक संदर्भ है। ग्राम और नगर जीवन की, व्यापक जनसमूह और एकांतिक व्यक्ति की, लघु अंचल और विराट राष्ट्र की उन्हें सहज पहचान है। और इन सबको सहज ही गहराई तक ले जाने में समर्थ ऐसी विशाल उदात्त मानवीय दृष्टि भी है। साथ ही, गुजराती भाषा को नानाविधि रूपों-स्तरों में प्रयोजित करने की सामर्थ्य सिद्धि भी है।" डॉ. नामवर सिंह ने रघुवीर चौधरी की सराहना करते हुए लिखा है कि उन्होंने अपने व्यक्ति को विभाजित होने से बचाने का प्रयत्न किया है और "वे अपने व्यक्तित्व को अविभाजित रखने के लिए बड़ी से बड़ी कीमत चुकाने के लिए कटिबद्ध प्रतीत होते हैं।"

यहाँ हम "चिता" कहानी का विश्लेषण-मूल्यांकन करेंगे, इसलिए उनके कहानीकार का विशेष परिचय प्राप्त करेंगे। रघुवीर चौधरी स्वयं को मूलतः कवि मानते हैं लेकिन कथा साहित्य में उनकी लेखनी प्रारंभ से ही चलती रही है। पूर्वराग (1964) उपन्यास के साथ ही उनकी कहानियां प्रकाशित होने लगी थीं। उनका पहला कहानी संग्रह– "आकस्मिक स्पर्श" सन् 1966 में प्रकाशित हुआ था। पचास वर्ष से कहानी क्षेत्र में सक्रिय रघुवीर चौधरी की

कहानी यात्रा में पड़ाव अवश्य हैं लेकिन कुछ ऐसे तत्व हैं जो प्रारंभ से ही उनकी कहानियों में दिखाई देते हैं। जैसा कि प्रस्तावना में बताया गया था कि सुरेश जोशी ने गुजराती कहानी की कथात्मकता एवं घटना बहुलता पर गंभीर टिप्पणी की थी और आधुनिक कहानी में घटना ह्रास या घटना तिरोधान को सराहा था। इस संदर्भ में उनका प्रसिद्ध कथन है : "घटना का जितना संभव हो उतना ह्रास सिद्ध करने का मेरा प्रयत्न है। मेरी रुचि "रूप" की रचना में है। मैंने भावनाओं का साँचे के रूप में ही प्रयोग किया है। रूप प्राप्त करने पर उन्हें वर्ज्य मानकर परिहार किया है। "सुरेश जोशी के रूप रचना केन्द्रित आधुनिकतावादी दृष्टिकोण के कारण गुजराती कहानी और कहानी समीक्षा की दिशा बदल गई। इसका प्रभाव तत्कालीन कहानीकार जैसे किशोर यादव, मधुराय आदि पर स्पष्ट दिखाई देता है। इतना ही नहीं परवर्ती कहानीकार भी इस प्रभाव से बच नहीं पाए। यह अलग बात है कि श्री चन्द्रकान्त बक्षी एवं श्री रघुवीर चौधरी अपने-अपने ढंग से इस प्रभाव को स्वीकारते हुए अपनी कहानियों में अनुभव को महत्व देते हैं। और रूप की साधना भी करते हैं। दूसरे कहानी संग्रह गेरसमझ (1968) की महत्वपूर्ण भूमिका "अनुभव से आवाज तक" में उन्होंने स्पष्ट लिखा है : "जीवन के साथ निस्बत न रखने वाली घटना का महत्व "कथा" के लिए होगा "कहानी" के लिए नहीं है। यदि वह जीवन की याद दिलाती हो तो घटना का प्रकार या उसका रूप बदल जाए, उसके प्रति एतराज नहीं उठाया जा सकता।"

रघुवीर चौधरी की कहानियों में कला और जीवन के बीच विसंगति नहीं है और न उनके यहाँ गाँव-शहर के बीच चौहदी बनी हुई है। उन्होंने प्रारंभ से ही गाँव और शहरी जीवन पर आधारित कहानियाँ लिखी हैं। सुरेश जोशी के प्रभाव में उन्होंने घटना तत्व का कम उपयोग या है और रूप गठन पर अतिरिक्त ध्यान दिया है लेकिन उनकी कहानियों में संवेदना और अनुभव को केन्द्रीयता मिली है। उन्होंने "चिता" कहानी के साथ ही "पूर्ण सत्य" और "मुश्केल" जैसी शहरी और मानव संबंधों को केन्द्र में रखने वाली कहानियाँ लिखी हैं। आठवें दशक तक आते-आते रघुवीर चौधरी की कहानियों में समय, परिवेश और अनुभूत जीवन का महत्व बढ़ता जाता है। "नंदीघर" (1977) और अतिथिगृह (1988) की कहानियों में इसके स्पष्ट संकेत मिलते हैं। यहाँ तक आते-आते पूर्ववर्ती अतिशय सांकेतिकता एवं "अप्रस्तुत कथन" के प्रति आग्रह घटता जाता है और "अनुभवजन्य सौन्दार्यानुभूति" की महिमा बढ़ती जाती है। इस परिदृश्य में हम "चिता" कहानी के "कथानक" को समझने का प्रयास करेंगे।

10-3 dFkkud

"चिता" रघुवीर चौधरी के पहले दौर की कहानी है। सर्वप्रथम यह श्री उमाशंकर जोशी द्वारा संपादित "संस्कृति " पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, तत्पश्चात प्रथम कहानी संग्रह "आकस्मिक स्पर्श " में इसे संग्रहीत किया गया। यह ग्रामीण परिवेश की कहानी है। गुजराती में ग्रामीण परिवेश की कहानियों की समृद्ध परंपरा है। उमाशंकर जोशी, पन्नालाल पटेल, ईश्वर पेटलीकर की कहानियों के केन्द्र में ग्राम जीवन है। इनके यहाँ बाह्य परिवेश के चित्रण के साथ मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व को भी अभिव्यक्ति मिली है। रघुवीर चौधरी ने इस परंपरा को आत्मसात किया है।

'चिता' दांपत्य प्रेम की कहानी है। एक आकस्मिक दुर्घटना–गँडासा लगने से टिटेनस के कारण पत्नी हेती की अकाल मृत्यु हो जाती है। इस आघात से जीवण का जीवन सत्वहीन बन गया है। वह स्वयं को इसका अपराधी मानता है, चिता की तरह उसके मन में भी आग सुलगती रहती है। इस दुर्घटना के परिणाम स्वरूप जीवण के जीवन की नीरसता और अपराधबोध को संकेतों में व्यक्त किया गया है। 'घटनाह्रास' की यह उत्तम कहानी है। यह

कहानी कुछ वर्णन और संकेतों के माध्यम से जीवण के परिवर्तित जीवन को बताती है। कहानी का प्रारंभ पूस की एक ठंडी रात में खेत में अलाव ताप रहे जीवण से होती है : "आग राख में छिप गई है। राख की ऊपरी पर्त ठंडी हो जाए, ऐसी कातिल ठंडी से मध्यरात्रि ठिठुर गई है। जीवण घुटनों पर सिर टिकाए बैठा है। उल्लू की आवाज द्वारा खेत का पश्चिमी ठोर जीवण की पलकों का स्पर्श करने लगा। उसने उस ओर कौतुहलशून्य दृष्टि से देखा और ठंडी पड़ती जा रही आग को अंत तक सुलगाए रखने, बचाए रखने के बारे में सोचने लगा। उसने लंबी फूँक मारी और चिनगारियां उड़ने लगीं। चिनगारियाँ उड़ती हैं, ऐसे समय जीवण विचारों में डूब जाता है.................'

खेत में अलाव के पास 'घुटनों पर सिर टिकाए बैठे जीवण की उदासी के कारण को अव्यक्त रखकर कहानीकार एक युवा स्त्री की अपमृत्यु और श्मशान के सुलगने का उल्लेख करता है। जीवण का चिता को जलते देख आना और लाश के अस्थि-अवशेषों के बारे में सोचने की प्रक्रिया कहीं न कहीं निर्देश करती है कि जीवण का चिता से कुछ न कुछ संबंध है। इस उपक्रम द्वारा कहानीकार पाठक में कौतूहल वृद्धि करने में सफल हुआ है।

तीसरे पेराग्राफ में कथाकार द्वारा जीवण की संपन्नता, शालीन व्यवहार, ग्रामवासियों की सदाशयता, पाँच वर्ष की सुंदर बेटी रई आदि का उल्लेख किया जाता है। सात वर्ष पहले विवाह, पाँच वर्ष से जीवण का स्वयं रोटी बनाना। गाँववालों की विवाह करने की मीठी सलाह और उन्हें अपमानित करके जाने के लिए कहने का विचित्र व्यवहार किसी बड़ी दुर्घटना का संकेत देते हैं। सलाह सुनकर उन्हें 'खरी-खरी' सुनाने वाले जीवण की मनःस्थिति इन शब्दों में प्रकट होती है : 'क्या समझते हैं सब लोग मुझे? और सब लोग नीचा मुँह करके चले गए थे। जीवण अपने घर की दहलीज पर अकेला खड़ा रहा गया था। अपने घर से किसी को चले जाने के लिए कहने की घटना उसके जीवन में पहली बार घटी थी। पहले तो उसका घर अतिथियों के स्वागत के लिए प्रसिद्ध था।" यहाँ तक किसी पूर्व दुर्घटना की आशंका तो होती है लेकिन कहानी में सस्पेंस बना रहता है।

अलाव के पास बैठे जीवण का अब सो जाने का निर्णय और फिर सपने में हेती से उसके संवाद द्वारा दुर्घटना को आंशिक रूप से प्रकट किया गया है। दो वर्ष के वैवाहिक जीवन के रागात्मक संबंधों पर महागाथा लिखी जा सकती थी, यहाँ संकेतों के माध्यम से अपराधबोध, ग्लानि और दांपत्य प्रेम की दृढ़ता जैसे भाव प्रकट हुए हैं। कुछ संवादों के माध्यम से इन संश्लिष्ट भावों का संकेत देना कहानीकार के कथा कौशल की प्रौढ़ता का परिचायक है :

"लोगों की बात सच ही थी। '

कौन सी बात?

किन्तु भूत बन गई है

तुम सचमुच ऐसा मानते हो ? मैं भला भूत बन सकती हूँ ?

'हाँ बन सकती है। मरने वाले की वेदना इसी तरह छाया बनकर भटकती रहती है।'

'नहीं-नहीं, यह तुम्हारा बहम है। भूत नहीं बनी हूँ। कुछ नहीं बनी हूँ।'

....

'कसाई ? तू भी ऐसा ही समझती है हेती ? सारा गाँव भले ही कहे, पर तू भी यही कहेगी? मुझे क्या पता कि गँडासे की जरासी चोट तुझे खा जाएगी और मैं बे सहारा हो जाऊँगा?

"दोष तो मेरा ही था, लेकिन अब क्या हो सकता है? गुस्से ही गुस्से में मैंने दूध-शक्कर पी लिया था और बात छिपाए पड़ी रही थी। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं।"

"मुझसे गलती हो गई। मुझे माफ कर दो। अब दूसरा ब्याह कर लो, दुखी मत रहो।"

"क्या कहा? ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

"आज तुमसे वचन लिए बिना मैं नहीं जाऊँगी।"

नहीं, यह नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता। कभी नहीं। कभी नहीं।"

हिन्दी कहानी में ऐसे संक्षिप्त, सार्थक और कथातत्व के बोझ को कम करने वाले संवाद कम मिलते हैं। कहानी में इन संवादों के द्वारा कई तथ्यों का निर्देश कर दिया गया है जिन्हें वर्णनात्मक रूप से प्रस्तुत करने पर कई पन्ने भर सकते थे। इस कहानी में अनावश्यक संदर्भों और वर्णनों को छोड़ने और सांकेतिक रूप से कथ्य को प्रस्तुत करने की सजगता है। खेत, चिता, पूस की रात, अलाव ताप रहा जीवण और फ्लेश बैक शैली द्वारा पूर्व दुर्घटना का उल्लेख कहानी को अत्यधिक सांकेतिक बना देते हैं। यह आघात जीवण को व्याकुल और विचलित अवश्य रखता है लेकिन पूरी तरह निष्क्रिय नहीं होने देता। खेत से घर आते हुए "भरथरी " का भजन सुनकर पूर्व जीवन का विषाद फिर से उसकी आँखों को नम कर देता है। बेटी का उसे रोते देखना और कार्य (दायित्व) में लगे रहते फिर से खेत लौटने की प्रक्रिया एक साथ उसकी व्याकुलता, वेदना, अपराधबोध और दायित्व को संश्लिष्ट रूप में व्यंजित करता है। इस तरह एक प्रमुख घटना और एक पात्र के माध्यम से किसान जीवन पर आधारित दांपत्य प्रेम की यह आधुनिक गुजराती कहानी गठित की गई है।

10-4 çeq[k ik= % thou.k-Òkjrh; thou 'kSyh dk okgd

आधुनिक कहानी में घटना, प्रसंग और स्थितियों की बहुलता को कलात्मक नहीं माना जाता है और न इसमें पात्रों की अधिकता का अवकाश रहता है। एक संवेदन, मनःस्थिति, पात्र, विचार, भाव को आधार बनाकर कहानी अपना रूप गठित करती है। घटना और स्थितियों की बहुलता कहानी के स्वरूप को शिथिल कर देती है, वहीं प्रतिनिधि पात्रों की योजना उपन्यास में हो सकती है। कहानी का विन्यास इसकी अनुमति नहीं देता। कहानी का पात्र तो विशिष्ट ही होता है। कहानी में पात्र का महत्व इस रूप में भी माना जा सकता है कि घटना के बिना कहानी हो सकती है, लेकिन पात्र के बिना संभव नहीं हो सकती। लेकिन इसमें पात्र के व्यक्तित्व का संपूर्ण निरुपण भी संभव नहीं है। मात्र कुछ संकेतों, स्थितियों के निरुपण द्वारा कहानीकार पात्र निरुपण करता है। और इस प्रकार ही समाज से विछिन्न या समाज के जुड़े पात्र के क्रिया व्यापार कहानी में प्रकट होकर उसे आकार दे सकते हैं।

"चिता " कहानी का प्रमुख पात्र जीवण एक संपन्न किसान है। यह चरित्र प्रधान कहानी है। जीवण का आघाट, अपराधबोध और दायित्व सजगता उसके पात्र को विशिष्ट बनाते हैं। कहानी के प्रारंभ में जीवण अलाव के पास अन्यमनस्क बैठा है। उसकी उदासी और "कौतूहल शून्य दृष्टि" उसकी निष्क्रियता को प्रकट करती है। किसान जीवन में ऐसी निष्क्रियता को अवकाश नहीं होता, इससे आघात की दारुणता व्यंजित की गई है। पूर्व स्थितियों के उल्लेख द्वारा जीवण के सामुदायिक जीवन में जुड़ाव के संकेत दिए गए हैं। एक समय रास-गरबा में "गरबी का अंतरा उठाती हुई आवाज सारे चौगान और मंदिर के शिखर तक छा जाती थी। "अब वह आवाज कमजोर हो गई है। दुर्घटना ने उसके आंतरिक संतुलन को खत्म कर दिया है। यद्यपि जीवण-हेती का दांपत्य जीवन दो वर्ष का ही था लेकिन मुग्धता और उन्माद के रागात्मक क्षणों के संकेत कहानी में दिए गए हैं जिससे पूर्व

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

जीवण और परवर्ति को जाना जा सकता है। जीवण के चरित्र की विशिष्टता उसके अपराधबोध में है। रागात्मक क्षण में गँडासा छीनते हुए उसकी चोट से हेती की अपमृत्यु होने का दोषी वह स्वयं को मानता है। इस आघात से पाँच वर्ष होने पर भी वह उभर नहीं पाता। दूसरा विवाह न करने का दृढ़ निर्णय उसे चरित्र की उदात्तता का संकेत देते हैं। यह कहानी दांपत्य प्रेम की ऐसे समय प्रतिष्ठा करती है जब पति-पत्नी संबंधों की ऊष्मा और प्रेम के विलीन होने को ही आधुनिक कहानी की प्रिय वस्तु माना जाने लगा था और पति-पत्नी में तीसरे का आगमन की कहानियाँ लिखी जा रही थीं। ऐसे में परंपरित दांपत्य प्रेम की यह कहानी जीवण के चरित्र के नए आयाम प्रस्तुत करती है। सपने में हेती के सामने ग्लानि और अपराधबोध में डूबा जीवण दूसरे विवाह के लिए दृढ़ता से इंकार करता है। यह दृढ़ निर्णय पाँच वर्ष के पश्चाताप और बेटी रई का लालन-पालन करते हुए अधिक परिपक्व हुआ है।

छोटे घटना विधान की कहानी होते हुए भी कहानीकर कुछ संकेतों द्वारा प्रमुख पात्र जीवण के चरित्रगत वैशिष्ट्य को प्रकट करने में सफल रहा है। कहानी में जीवण की उदासी, अस्थिरता, व्याकुलता और बेचैनी के साथ उसकी दृढ़ता, दायित्वबोध और संबंधों की स्थिरता भी प्रकट होती है। जीवण का पात्र इसलिए विशिष्ट है कि वह लंबे समय तक इस भाव को टिकाए रखता है और पुत्री हेती का दायित्व पूरी सजगता से निर्वाह करता है। कहानी के अंत में मार्मिक दृश्य है। "भरथरी " सुनकर पूर्व जीवन की याद से उसके आँसू आ जाते हैं। लेकिन वह भैंस दुहता है। चाय बनाता है और काम सौपकर फिर से खेत पर चला जाता है :

"तुम .... तुम रो रहे हो .... तुम रो रहे हो बापू?"

नहीं बेटी, यह तो धुआँ हो रहा है न! आवाज को खुश्क बनाने की कोशिश करते हुए जीवण ने उत्तर दिया, "मुझे खेत में काम है बेटा, जब तक पशुओं का यह अनाज पक नहीं जाए, आग जलाए रखना और तापती रहना, मैं आता हूँ।"

इस तरह आधुनिक कहानी में संबंधों के बिखराव, विघटन में मानसिक संताप सह रहे पात्रों के बीच जीवण का परंपरित भारतीय मूल्यों में विश्वास एवं दायित्व बोध उसे अधिक प्रभावशाली बनाता है।

10-5 vk/kqfudrk % vijk/kc¨/k v©j nkf;Roc¨/k

जैसा आधुनिकता के संदर्भ में हम जानते हैं कि साहित्य में आधुनिकता एक मूल्य, एक दृष्टि या एक प्रक्रिया के रूप में प्रतिष्ठित है। आधुनिकता परंपरित मूल्यों, विश्वासों का स्थूल विरोध नहीं करती लेकिन इससे समाज-जीवन और विचार के क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन आए हैं। हम यह भी जानते हैं कि आधुनिकता और आधुनिकतावाद एक नहीं हैं। आधुनिकतावाद का संबंध पश्चिमी और विशेष रूप से यूरोपीय अमेरिकी साहित्य का विचार सरणियों से है जो विश्वयुद्ध के दौरान अस्तित्व में आई थीं। इस आधुनिकता और आधुनिकतावाद ने भारतीय भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया है, लेकिन भारतीय भाषाओं के साहित्य में उसका प्रभाव अलग-अलग है। छठवें-सातवें दशक में गुजराती साहित्य इससे गहरे रूप में प्राभावित रहा। गुजराती में रूप-रचना केन्द्रित दृष्टि का प्रतिफलन है। गुजराती कविता और कहानी के क्षेत्र में इसका विशेष प्रभाव पड़ा। एक समय कहानी कविता के समीप पहुँचने लगी और समीक्षक इसे कलात्मकता का मापदंड मानते थे। इस आन्दोलन का सकारात्मक प्रभाव रूप सजगता के रूप में माना जा सकता है।

सुरेश जोशी की परवर्ती पीढ़ी के कहानीकार रघुवीर चौधरी के उस दौर की कहानियों में रूप की अतिरिक्त सजगता दिखाई देती है। प्रस्तुत कहानी उसी दौर की है। इसके शिल्प के वैशिष्ट्य पर आगे विचार किया जाएगा। यहाँ परवर्ती इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि आधुनिकता के संदर्भ शहर जीवन के साहित्य तक सीमित हो सकते हैं? जिस तरह गाँव और शहर के जीवन को परंपरा और आधुनिकता के बीच विभाजन को देखा जाता रहा है; क्या साहित्य को वर्ण्य विषय के आधार पर विभाजित किया जा सकता है? उदाहरण के लिए, हिन्दी में तथाकथित "नयी कविता" और "नयी कहानी" बहुत कुछ पश्चिमी मूल्यों और आधुनिकतावाद से प्रभावित रही है। इसके मूल्यांकन के प्रतिमान भी तथाकथित कलावादी रहे थे और उनमें सामाजिक संदर्भों की उपेक्षा की जाती थी। इस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कहानी को देखें तो आधुनिकतावाद से प्रभावित होते हुए भी वर्ण्य विषय में भारतीय जीवन संदर्भों को प्रस्तुत करती है। जीवण का अपराधबोध भारतीय है, पश्चिमी नहीं और इसके निहितार्थ भारतीय समाज जीवन में मिलते हैं। पति-पत्नी संबंधों में बिखराव और पारिवारिक मूल्यों के विघटन के विपरीत यह दांपत्य प्रेम की अद्भुत कहानी है। इसकी मूल्य निष्ठा आधुनिकतावाद से भिन्न है। यहाँ उस प्रेम की प्रतिष्ठा है जिसका तिरोधान आधुनिक कहानियों में दिखाया जाता है। जीवण का अपराध बोध प्रेम के स्थायित्व का संकेत देता है। इसे विश्लेषित करने का प्रयास किया जाए तो यह भारतीय परिवेश में पल्लवित होता हुआ स्वाभाविक रूप से देखा जा सकता है। युवा दंपति के बीच की हँसी-ठिठोली स्वाभाविक है। इसी में घटित दुर्घटना जीवण को गहरा आघात देती है। इसी कारण वह स्वयं को पत्नी का हत्यारा मानता है। यह बोध उसे प्रेम की परिपक्वता का भी संकेत देता है। आघात सहता हुआ वह अपने दायित्व को वहन करता है। ग्राम परिवेश में व्यक्ति सामूहिक जीवन का भाग होने के कारण आत्मलिप्त और अकेलेपन की मनःस्थिति और निष्क्रियता को अवकाश कम होता है। खेत, पशु, घर, समूह जीवन ऐसे अवकाश को कम करते हैं। जीवण का खेत, बेटी और घर के प्रति दायित्व के निर्वाह से यह फलित करवाया गया है। पूर्व जीवन के स्मरण से आँखें गीली होने पर भी वह खेत की ओर चल देता है। यहाँ बेटी के सामने से हटने के साथ दायित्व निर्वाह का भी संकेत है। यह आधुनिक दृष्टि ग्राम जीवन पर आधारित भारतीय साहित्य में निहित है।

10-6 f'kYi dk vk;ke

कहानी अपने साहित्य प्रकार के रूप में कई स्तरों से गुजर चुकी है। आपने यह भी अनुमान लगाया होगा कि जिस तरह साहित्य की अन्य विधाओं की सर्वमान्य विशेषताएँ नहीं हैं उसी तरह कहानी की अन्तर्वस्तु और स्वरूप की सर्वमान्य धारणा में सरलीकरण का खतरा है। फिर भी, हमेशा अन्तर्वस्तु और रूप को विभाजित करके देखने के प्रयत्न होते रहे हैं। कहानी की जिन विशेषताओं को सर्वाधिक स्वीकृति मिली है, उनमें एकमात्र प्रधान घटना, एकमात्र प्रमुख चरित्र, कसावपूर्ण कल्पना प्रसूत कथावस्तु, गठन और प्रभाव की अन्विति आदि हैं। किसी कहानी के रूप पर विचार करते समय गठन और संयोजन पर ध्यान देना आवश्यक होता है। इसी तरह अनावश्यक विवरण का निषेध कहानी की प्रभान्विति में सहायक होता है।

"चिता " उस दौर की कहानी है जब गुजराती कहानी में प्रयोगशीलता अपनी चरमसीमा पर थी। घटनाह्रास, यथार्थ को विगलित करना, प्रतीकात्मकता और घटना को "स्प्रिंगबोर्ड " की तरह प्रयोग करने का उपक्रम केन्द्र में था। यथार्थ को जितना अधिक विगलित किया जाए उतनी कलात्मकता की सिद्धि माना जाने लगा था। "चिता " कहानी परोक्ष रूप से इससे प्रभावित है, कहानी के रूप विधान पर विचार करते हुए यह समझा जा सकता है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि कहानी की मुख्य घटना पाँच वर्ष पूर्व पत्नी हेती की गँडासा लगने के कारण टिटनेस से हुई अपमृत्यु है। उदास, पर्याप्त निष्क्रिय अपराधबोध से ग्रसित जीवण को "चिता" की आग अंदर ही अंदर झुलसा रही है। कहानी का प्रारंभ श्मशाम में एक युवा स्त्री की चिता के जलने से होता है। जीवण आधा घंटे पहले वहाँ से लौटा है। श्मशाम के पास के अपने खेत में अलाव के पास बैठा है। इस घटना के माध्यम से पाँच वर्ष पूर्व की घटना की स्मृति का संयोजन किया गया है। उल्लेखनीय है कि कहानी का समय तो रात से लेकर सूर्योदय तक ही है। जीवण का चिता के पास से आकर अलाव जलाना, सोने का प्रयत्न और जागकर पुत्री हेती से मिलकर वापस खेत पर लौटने के बीच का अन्तराल दस घंटों का ही है। वर्तमान और अतीत में आवा-जाही कराते हुए कहानीकार कहानी का रूप निर्मित करता है, इसके लिए स्थितियों का निरूपण, पूर्व दीप्ति शैली, स्वप्न का उपयोग किया गया है।

कहानी का प्रारंभ वर्णन से होता है। कातिल ठंडी में "अलाव की आग राख में छिप गई है।" फूँक मारकर अलाव की आग को सुलगाने का प्रयत्न करता जीवण चिनगारियाँ उड़ने पर विचारों में खो जाता है। कथाकथक द्वारा किसान जीवण की संपन्नता, शालीनता, उपकारक वृत्ति का संकेत दिया जाता है। इसके बाद कहानी फिर से वर्तमान में आ जाती है। ठंडी के कारण अलाव में सूखी कड़वी डालकर सर्दी भगाने का प्रयत्न, सोने का उपक्रम और नींद न आने पर पाँचवर्ष पूर्व की पूस की द्वादशी की स्मृति कहानी में कौतूहल की वृद्धि करते हैं और रोचकता को बढ़ाते हैं। स्वप्न और पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग करके रघुवीर चौधरी ने इसे सघन रूप से गूँथा है, शिथिलता दिखाई नहीं देती। एक स्वप्न में बिखरे परिवार का संकेत दिया हैं। पोखर के किनारे पीपल को तने से काट डाला गया है, तने के टुकड़ों के बीच "छतविहीन झोंपड़ी " है जिसमें सुनहरे बालों वाला एक बच्चा है जिसके "गालों पर बहे हुए आँसुओं की धाराएँ सूख गईं हैं। " जीवण उस बच्चे को बुलाने का प्रयत्न करता है लेकिन आवाज बच्चे तक नहीं पहुँच पाती। दूसरे स्वप्न में वह अपने शरीर पर पत्नी हेती का बोध महसूस करता है। संक्षिप्त संवादों द्वारा कहानीकार जहाँ दोनों के प्रेम को व्यंजित करता है, वहीं पूर्व घटित घटना और उसके फलितार्थों का भी संकेत दे देता हैः

"ओह! तुम तो पूरे कसाई हो। "

"कसाई? तू भी ऐसा समझती है, हेती? सारा गाँव भले कहे, पर तू भी यही कहेगी। मुझे क्या पता कि गँडासे की जरासी चोट तुझे खा जाएगी और मैं बेसहारा हो जाऊँगा। "

"दोष तो मेरा ही था लेकिन क्या हो सकता है। गुस्से ही गुस्से में मैंने दूध-शक्कर पी लिया था और बात छिपाए पड़ी रही थी। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं।"

....

"मुझसे गलती हो गई। मुझे माफ कर दो। दूसरा ब्याह करलो, दुखी मत रहो। "

"क्या कहा। ऐसा कभी नहीं हो सकता।

"आज तुमसे वचन लिए बिना मैं नहीं जाऊँगी। "

नहीं, यह नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता। कभी नहीं। कभी नहीं। "

यद्यपि कहानी में संवाद योजना का कम अवकाश होता है, लेकिन कहानीकार ने स्वप्न में पति-पत्नी के संवादों के माध्यम से कई तथ्यों को उजागर किया है जिनकी अभिव्यक्ति में कई पृष्ठ भर सकते थे। इसी तरह वर्तमान रात पूस की एकादशी की रात है और पाँच वर्ष पूर्व की द्वादशी की रात थी। कहानी के गठन में कहानीकार के संयोजन कौशल प्रेमचंद

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

युगीन और गुजराती की घूमकेतु और द्विरेफ कालीन कहानियों में नहीं मिलता। सांकेतिकता, छोटे-छोटे वाक्यों का गठन और भाषा का स्वाभाविक प्रवाह इस कहानी की विशेषता है। वर्ण्य विषय में परंपरित लगते हुए भी रूप और निरूपण की सूक्ष्मता के कारण यह आधुनिक गुजराती कहानी का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ है।

10-7 lkjka'k

रघुवीर चौधरी की "चिता" कहानी कई पहलुओं से महत्वपूर्ण काहनी है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से गुजराती कहानी का प्रतिनिधित्व करती है, दूसरे यह स्वातंत्र्योत्तर गुजराती कहानी में प्रयोगशीलता में उन्मेशों को कलात्मक उपयोग करने वाली सिद्ध होती है। आधुनिक गुजराती कहानीकारों में रघुवीर चौधरी ऐसे कहानीकार हैं, जिनकी कहानियों में पर्याप्त वैविध्य है। अपनी रूप रचनाधर्मी सजगता के साथ उनकी कहानियां संवेदना और मानवीय संदर्भों, मूल्यों को तरजीह देती है। "चिता" उनकी प्रतिनिधि कहानी है।

10-8 vH;kl

- "भारतीय कहानी " के संदर्भ में गुजराती कहानी के वैशिष्ट्य को समझने का प्रयत्न करें।
- "चिता " कहानी की प्रयोगशीलता को समझने का प्रयास करें।
- आधुनिक भावबोध के संदर्भ में प्रस्तुत कहानी का अध्ययन करें।
- "चिता " कहानी की शिल्पगत विशेषताओं पर विचार करें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

bdkÃ 11 Þnıtk dchjÞ % fo'y"k.k v©j eY;kdu

bdkÃ dh :ijs[kk

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 लोक कथा की शैली में कथा का आरंभ
11.3 कथा के पात्र
11.4 वातावरण का निर्माण
11.5 कला का स्वभाव
11.6 राजमद से टकराव
11.7 अन्य कथाओं से तुलना
11.8 कहानी में उठाए गए सवाल
11.9 मनोभावों का चित्रण
11.10 नाटकीयता
11.11 भाषा शैली
11.12 सारांश
11.13 अभ्यास

11-0 mís';

इस इकाई में आप राजस्थानी और हिंदी कहानी के एक महत्वपूर्ण लेखक के रूप में विजयदान देथा के कथा साहित्य से परिचय प्राप्त करेंगे/करेंगी। इनकी एक सशक्त कहानी 'दूजौ कबीर' पाठ हेतु आपके सामने है। इस इकाई अध्ययन के बाद आप :

- विजयदान देथा के कथा साहित्य से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- राजस्थानी कहानी की मूल संवेदना को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- 'दूजौ कबीर' कहानी के माध्यम से राजस्थानी लोककथा में मौजूद प्रतिरोध की चेतना को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- 'दूजौ कबीर' तथा 'अनामदास का पोथा' की कथाओं के बीच तुलना के जरिये लोक और शास्त्र की पारस्परिकता को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- 'दूजौ कबीर' कहानी के विवेचन के माध्यम से राजमद और फकीरी अद्वैत की टकराहट को देख सकेंगे/सकेंगी; तथा
- 'दूजौ कबीर' कहानी के माध्यम से राजमहल में कैद स्त्री की छटपटाहट का अनुभव कर सकेंगे/सकेंगी।

11-1 iLrkouk

राजस्थानी कहानी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर विजयदान देथा हैं। उन्होंने राजस्थानी लोककथाओं का शोध कर आधुनिक संदर्भों में उनकी सृजनात्मक पुनर्रचना की है। वे न सिर्फ राजस्थानी

कहानी के बल्कि हिंदी कहानी के भी महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियों में मौजूद लोकतत्व ने कहानी का कहानीपन पुनः प्राप्त किया है। इसी कारण हिंदी में विभिन्न क्षणजीवी कहानी आंदोलनों के बीच भी उनकी कहानियों ने लोक में मौजूद विद्रोह की उपस्थिति निरंतर बनाए रखी है। स्पष्ट है कि लोककथाओं की शैली में लिखे होने के कारण कथानक और शैली को अलगाया नहीं जा सकता। इसलिए आवश्यक है कि कहानी का एक संक्षिप्त जायजा लिया जाए।

11-2 yksd dFkk dh 'kSyh esa dFkk dk vkjEHk

कहानी का आरंभ ही लोककथाओं की शैली में होता है। 'ये भारी भरकम पोथे, कबिरा जाने जितने थोथे। ये धरम करम के पथ सारे, मल कीचड़ के ही गलियारे। ये तीरथ बरत के धाम, जिनसे अल्लाह बचाए राम। यह भाग भरम की शोभा, तोबा रे बापू तोबा। ये ऊंच-नीच की बातें, अनंत कजियारी रातें। ये राव रंक के जाले, शरासर झूठे और काले। सूरज उगने पर ही मिटती रात, दिशा दिशा में स्वर्णित प्रभात। तो वक्त के मुताबिक यह बात बरसों पुरानी है कि हरियाली के बीच और हवा के झूले पर एक गांव बसा हुआ था।' इस अंश में साफ तौर पर हम एक तरह के लोकतात्विक रहस्यमय कथा काव्य शैली का परिचय पाते हैं। यह शैली मूलतः हमारे सामने कथा कहने की पारंपरिक दुनिया को खोलती है जहां कथा का दार्शनिक मंतव्य अत्यन्त आकर्षक सूक्तियों के जरिये पाठक के सामने खुलता जाता है। ऊपर के उद्धरण में हमने देखा कि भारी भारी पोथियों का थोथापन और धर्म के बाह्य आडंबर के प्रति कथा वाचक की हिकारत व्यक्त हुई है। कथा वाचक अनुप्रास युक्त काव्यात्मक उक्तियों के जरिये न सिर्फ धर्म के बाह्य आडंबर का विरोध करता है बल्कि समाज में मौजूद ऊंच नीच की रवायत को भी धता बताता है। वह उसे अनंत कजियारी रात कहता है और ऊंच नीच के विरोध का ठोस सामाजिक संदर्भ राव रंक का विरोध बताता है। कथा वाचक केवल काली रात का ही वर्णन नहीं करता बल्कि सूरज उगने पर एक तरह की नई रोशनी की आशा भी करता है। उद्धरण के अंत में हमें लोक जीवन में मौजूद मानव और प्रकृति की आदिम एकता का आभास होता है। जब कथा वाचक समूची प्रकृति को एक ही इकाई के बतौर परिभाषित करते हुए कहता है कि हरियाली के बीच और हवा के झूले पर एक गांव बसा हुआ था। कथाकार की चेतना में गांव और उसके बाशिंदे भी प्रकृति का ही अंग हैं।

11-3 dFkk ds ik=

इस संक्षिप्त किंतु अर्थव्यंजक भूमिका के उपरांत विजयदान देथा कहानी के पात्रों का पाठकों से परिचय कराते हैं। यह परिचय लोककथा वाचक की शैली से तो प्रभावित है ही, हमें बहुत कुछ प्रेमचंदीय शैली की भी याद दिला देता है। प्रेमचंद पात्रों का परिचय कहानी में उनके आने के क्रम में कराते थे। उसी तरह विजयदान देथा भी हमसे सबसे पहले कहानी के मुख्य पात्र कबीर का परिचय कराते हैं। यह पात्र न सिर्फ नाम से कबीर है, बल्कि कबीर की ढेर सारी विशेषताएं भी मौजूद हैं। 'उस झोंपड़ी में बसने वाले व्यक्ति का नाम तो कुछ और ही था, पर गांव व इलाके के लोग उसे व्यंग्य व ताने के बहाने कबीर के नाम से ही बतलाते थे। अलाव के चारों ओर बैठकर कभी कभी उस बस्ती के लोग पुरजोर शब्दों में कहते थे कि किसी औरत की कोख से जन्म ने लेकर यह कबीर कुकुरमुत्ते या नागछतरी की तरह आप ही आप जमीन से उगा होगा'। यह कबीर न सिर्फ नाम से कबीर है बल्कि कबीर की तरह जुलाहे का काम भी करता है। न सिर्फ इतना बल्कि 'बातें एकदम उल्टी, सिरफिरी व बेहूदी करता था'। उसकी इन विशेषताओं से आप कबीर की बानियों को उलटबांसी कहने का अर्थ भी समझ सकते हैं। जमाना जो भी कहता है या जैसे

भी चल रहा है उसे गलत कहनेवाला समाज की नजर में उल्टी बात करनेवाला ही समझा जाएगा। बहरहाल, कबीर के हाथ में हुनर बसा हुआ था। 'उसके हाथों बुने कालीन के फूलों पर भंवरे भ्रम से मंडराते थे और कभी पके फलों के भुलावे में तोते चोंच मारते थे'। कहने का मतलब यह कि उसकी कारीगरी वास्तविकता का भ्रम पैदा करती थी।

कबीर की कारीगरी ऐसी थी कि उसकी प्रसिद्धि सुगंध की तरह गांव तक ही सीमित न रहकर जगह जगह फैली हुई थी। इसी मोड़ पर हमारा परिचय कहानी के दो और पात्रों से होता है। ये दो पात्र हैं—उस रियासत के मालिक अर्थात राजा और उनकी बेटी। इत्तफाकन राजा और राजकुमारी कबीर के गांव के ही तालाब किनारे पड़ाव डालते हैं। यहां भी हमें लोककथा के तत्व इस बात में दिखाई पड़ते हैं कि खबर मिलते ही समूचा गांव राजा और राजकुमारी के दर्शन के लिए आ गया। तभी राजकुमारी को कबीर के बारे में सुनाई पड़ा। राजकुमारी को उत्सुकता हुई और उसने कबीर के बारे में पूछताछ की। उसने पूछा कि कबीर का गाँव यही है क्या? राजकुमारी की उत्सुकता के उत्तर में गांव के सामान्य लोगों की स्वामिभक्ति दिखाई पड़ती है। उन्होंने कहा 'कि गांव तो मालिकों का है, पर कबीर यहीं रहता है'। कबीर की उलटबांसियों में एक गहरा अद्वैत तत्व है। उसे राजा की सत्ता का कोई भय नहीं। इसीलिए वह राजा के आने की खबर पाकर भी स्वयं मिलने के लिए नहीं आया था। राजकुमारी जब कबीर से मिलने से उत्सुकता दिखाती है तो राजा का मुसाहिब गांव का ठाकुर, जो कबीर से परेशान था, कबीर से बदला लेने के लिए कहता है 'आप से क्या अर्ज करूं अन्नदाता, इस कबीर का दिमाग आसमान में चढ़ा है। आपके बुलाने पर भी आ जाए तो गनीमत है'। यहीं से हमें राजमद और कबीर की अद्वैत समतावादी दृष्टि के बीच टकराहट का आभास मिलने लगता है। वे ठाकुर को डांटते हैं तो ठाकुर बताता है कि 'यह पागल कबीर तो भगवान की भी नहीं सुनता।' राजकुमारी राजमहल के भीतर के ऊबभरे जीवन की निस्सारता को अच्छी तरह समझती थी इसलिए कबीर के इस हठ से उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। लेकिन उसे लगा कि यदि उसके पिता का अहंकार उदित हो गया तो कबीर से मिलने का यह मौका चला जाएगा। कहानी में हमें राजकुमारी की चतुराई कदम कदम पर दिखाई पड़ती है। कहते भी हैं कि जो गुलाम होते हैं वे अपनी इच्छापूर्ति की राह बुद्धि चातुर्य के बल पर ही खोज सकते हैं। यही कारण है कि तमाम लोककथाओं में हमें ऐसे पात्र मिलते हैं जिनकी कुल पूंजी उनका बुद्धि चातुर्य ही होता है। शायद यही कारण है कि हिंदी उपन्यास में देवकी नंदन खत्री ऐसे पात्रों के लेकर आए जो किसी भी शारीरिक बल अथवा सत्ता की शक्ति के मुकाबले अपनी बुद्धि चातुर्य के बल पर ही तमाम परेशानियों को हल करते हैं और खत्री जी के उपन्यासों की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण ही यह भी है। चतुर राजकुमारी राजा से अपना काम निकलवाने के लिए यह कहती है कि 'आपके मुंह से ही तो मैंने सीख की यह बात सुनी कि कलाकारों की आदतें कुछ सनकी होती हैं। उनकी कद्र तो जाननेवाला ही जानता है।' बेहद कम पात्रों के जरिये लिखी हुई इस कहानी में मनोभावों का उतार चढ़ाव बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। इसलिए हमें राजा कबीर राजकुमारी और ठाकुर के बीच चलनेवाली बातचीत को बहुत ध्यान से देखना चाहिए। राजकुमारी की बात सुनकर राजा का चढ़ता हुआ गुस्सा उतर गया। इस स्थिति को कहानीकार ने लोक जीवन के अद्‌भुत निरीक्षण से उत्पन्न एक उत्प्रेक्षा के जरिये दर्ज किया है 'उफनते दूध पर मानो ठंडे पानी का छींटा लगा हो।'

11-4 okrkoj.k dk fuek.k

राजा अपनी बेटी के साथ कबीर के यहां चलने को तैयार हो गया। उसे आश्चर्य हुआ कि ऐसा प्रसिद्ध कलाकार झोंपड़ी में रहता है लेकिन जब वह पहुंचा तो उसने जो झोंपड़ी देखी वह असल में लोगों के बीच रहने वाले उन्हीं के इस्तेमाल के लिए चीजें बनाने वाले एक

शिल्पी की समृद्धि का सबूत थी 'माडनों से चित्रित आंगन। देवता खेलें जैसा साफ सुथरा' वहां बैठकर कबीर करघे पर अपना काम कर रहा था। शोर सुनकर जब निगाह उठाई तो उसने देखा 'गांव मालिक के साथ एक अजनबी प्रौढ़ आदमी। रेशमी अचकन। सोने का मुकुट। बांकी मूंछें। कमर से लटकी सोने के म्यान की तलवार।' इन दोनों दृश्यों के बीच का टकराव आप बखूबी देख सकते हैं। कहां तो कलाकार की खूबसूरती उसके घर की सफाई में है और कहां राजा का ऐश्वर्य उसके बाहरी साज-सज्जा में। लेकिन कहानी में राजा की यह जो एक तरह की घिनौनी भौतिक समृद्धि का दृश्य है उसी के साथ कोमलता का तत्व जोड़ते हुए कहानीकार बगल में खड़ी उसकी बेटी के बारे में कह रहा है 'मृगनयनी की बड़ी बड़ी आंखों से समझदारी की आब साफ झलक रही थी।' दृश्य निर्माण की इस क्षमता के कारण ही विजयदान देथा की अनेक कहानियों पर फिल्में भी बन चुकी हैं। राजा के साथ खड़ी उसकी बेटी में मौजूद कोमलता का यह तत्व ही है जो कबीर को पिघला देता है और वह झटपट उठ खड़ा होता है। राजकुमारी पहली नजर में ही कबीर पर मुग्ध हो जाती है। उसे राजमहल में देखे सौंदर्य से एकदम उलट सुंदरता के दर्शन होते हैं 'तांबई रंग। काले भुजंग बाल और काली भुजंग दाढ़ी'। काले बाल और काली दाढ़ी से विपरीत रंग के अन्य वस्त्र कबीर पहने हुए था 'सफेद अंगरखी। सफेद ही धोती'। काले और सफेद का यह वैषम्य भी पुनः पाठक की आंखों के सामने पात्र की तस्वीर खड़ा कर देने की कहानीकार की क्षमता का प्रमाण है। इसी वेशभूषा के कारण 'राजकुमारी को इंसान के रूप में पहली दफा असली इंसान नजर आया।' कहानीकार संकेत से हमें यह बताता है कि राजा की झूठी आन बान और शान के सामने न झुकना ही असली इंसानियत है और यही चीज राजकुमारी को मोह लेती है। उसे महल में अब तक इंसान नहीं इंसानों के रूप में चलते फिरते पुतले मिला करते थे जो राजा के आदेश से ही चलते और रुकते थे। इनके विपरीत कबीर के रूप में उसे ऐसा इंसान मिला जो अपनी मर्जी का मालिक था।

11.5 कला का स्वभाव

राजकुमारी से कबीर की होनेवाली बातचीत में हम कला और सौंदर्य के कुछ संदर्भों को भी समझ सकते हैं। कलाकार को सामान्य से सामान्य चीज में भी सौंदर्य नजर आता है। राजकुमारी देखती है कि कबीर ने एक कालीन पर लोमड़ी का बिल बना रखा है। उसे समझ में नहीं आता कि इस बिल में क्या खूबसूरती है जिसके कारण कबीर ने कालीन पर उसे टांक दिया है। जब वह पूछती है तो कबीर कहता है कि 'कुदरत की हर वस्तु एक दूसरे से बढ़कर है न कोई उन्नीस और न कोई बीस।' यहां बहुत सहजतापूर्वक विजयदान देथा कला के संबंध में प्लेटो की धारणा की लोक व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। प्लेटो का कहना था कि कला ईश्वर की बनाई हुई प्रकृति का अनुकरण है। कबीर भी कुदरत की बनाई हुई हर एक चीज में खूबसूरती देखता है। कलाकार के पर्यवेक्षण और उसके सृजन की प्रक्रिया को मानो स्पष्ट करते हुए कबीर कहता है 'देखने में चूक होती है, तभी तो हाथ चूकते हैं। किसी वस्तु को देखते समय मेरी आंखें हाथ बन जाती हैं और करघे पर बैठते ही मेरे हाथ आंखें बन जातें हैं।' प्रकृति का सौंदर्य कलाकार अपनी सभी इंद्रियों से एकत्र भाव से अनुभव करता है और उसका सृजन करते हुए भी उसकी सभी इंद्रियां एकाग्र होकर उसका साथ देती हैं।

11.6 राजमद से टकराव

राजकुमारी को असली इंसान को देखकर अपार खुशी हुई। लेकिन राजा तो अपनी छवि का ही कैदी बना हुआ था। उसे कलाकार के सम्मान के लिए एक ही बात सूझी कि वह

मुंहमांगी कीमत पर कबीर की बनाई हुई चीजें खरीद ले। कबीर अपनी बनाई हुई चीजें मुफ्त में देने को तो तैयार है लेकिन बेचने के लिए तैयार नहीं। वह कहता है 'आपको शायद मालूम नहीं है कि मैं बेचने की खातिर बुनाई का काम नहीं करता। इलाके के सेठ महाजन लालच दे देकर हार गए पर मैंने अपनी कारीगरी को पैसों के बदले नहीं बेचा।' कबीर के इस कथन में हम सामुदायिक जीवन में कला की स्थिति को समझ सकते हैं। कला मूलतः मनुष्य की आत्मिक भूख की तुष्टि के लिए थी। पूंजीवाद के उदय के साथ बाजार के आगमन ने उसे खरीद बिक्री की चीज बना दिया किंतु सच्चा कलाकार होने के नाते कबीर खरीद बिक्री के इस धंधे में शामिल ही नहीं होना चाहता। कबीर के इस कथन में हम बाजार की शक्तियों का प्रतिरोध पढ़ सकते हैं। राजा सोचता है कि शायद कबीर को उचित दाम नहीं मिल रहा है इसलिए अपने कालीन नहीं बेचता किंतु कबीर तो सैद्धांतिक तौर पर खरीद बिक्री के खिलाफ है। कबीर के इस हठ से राजसत्ता का मद टकराता है और राजा कबीर की बनाई हुई चीजों को नष्ट करने का आदेश अपने सिपाहियों को दे देता है। राजकुमारी को इस बात से बेहद दुख होता है और वह किसी तरह से कबीर की जान बचाने की चिंता करने लगती है। राजा अपने सिपाहियों को कबीर को भी मारने का जब आदेश देता है तो राजकुमारी विरोध में खड़ी हो जाती है और कहती है 'आप तो कला के ऊंचे पारखी हैं, अच्छी कीमत अदा की।' कबीर का हठ राजकुमारी को भी अपने पक्ष में कर लेता है। यहां हम लोक मानस में बसी हुई एक आशा की अभिव्यक्ति देख सकते हैं। जब राजकुमारी आपत्ति प्रकट करती है तो राजा उसे नौलखा हार देना चाहता है किंतु कबीर राजा के इस अहंकार को मानो धूल में मिलाते हुए कहता है 'इंसान में इंसानियत ने रहने पर पीछे फकत मल मूत्र, खून, हड्डिया और खाल बचती है। तलवार की ताकत के बिना न दौलत बढ़ती है, न सत्ता।' लेकिन वह राजा को बता देता है कि 'तलवार और सिंहासन के आतंक से मौत' नहीं 'डरती'।

कबीर की इस सच्चाई के सामने राजा का समूचा अहंकार पानी हो जाता है। वह अत्यंत मासूमियत से कबीर से पूछता है 'यह नौकूंटी राज्य का सिंहासन, यह अखूट खजाना, यह विशाल फौज, ये चमचमाती तलवारें और ये हाथी घोड़े तक क्या इस मरी मौत से मेरी रक्षा नहीं कर सकते? क्या नाचीज रियाया की तरह मुझे भी एक दिन मरना होगा?' कबीर अपने सामने अब राजा को नहीं मृत्यु से भयभीत एक सामान्य संसार को देख रहा था और इसलिए वह साफ साफ कह सका कि 'आपकी आंखों पर राजमद का जाला छाया हुआ है। इस खातिर न तो आप सत्य का परस कर सकते हैं और न दर्शन।' राजा के प्रश्न से उसे लगा कि 'आज जिंदगी में पहली दफा सत्य के जगमगाते सूरज की झलक देखने के लिए' राजा के मन में हूक उठी है। राजा अब भी उलझन में ही फंसा था। वह पूछता है 'क्या तेरा यह सांच हुकूमत के दबदबे से भी बड़ा है?' कबीर को अपने मन की बात कहने का मौका मिल गया। उसने कहा 'कहां बेचारी हुकूमत की चिंगारी और कहां सांच का तपता सूरज।'

राजा भी इस फकीर के सामने अपना राजमद भूलकर जमीन पर आ गया। कहा, 'इतनी बड़ी रियासत का राजा होकर मैं मन ही मन तुझसे डर गया।' उर्दू के प्रसिद्ध कवि फिराक गोरखपुरी ने लिखा है 'राजहठ से जो प्रजाहठ कभी टकराई है/वक्त के दिल के धड़कने की सदा आई है'। हम देख सकते हैं कि एक सामान्य कारीगर के आत्मविश्वास और सत्य के सामने राजा भी छोटा पड़ जाता है। सचमुच ऐसा न भी होता हो तो कहानीकार ने जनता के मन में दबी हुई इस इच्छा को अभिव्यक्त जरूर किया है। कहानी का अंत आते आते हम पाते हैं कि कबीर अपने फटे हुए चीथड़ों की मरम्मत में जुट गया है। उसे विश्वास था कि 'उसके पोरों का परस पाने से तो ये चीथड़े भी मुंह बोलने लग जाएंगे।' मरम्मत का काम करते-करते रात हो गई। उधर राजा अपने खेमे में वापस चला गया था लेकिन

राजकुमारी के दिल में तो आग लगी हुई थी। वह रात में चुपचाप खेमे से बाहर निकलकर आई और हथेली पर दीपक लेकर कबीर की सहायता करने लगी। कबीर की साधना से राजकुमारी भी प्रभावित हो गई थी। पूछने पर उसने कहा ' सारी रात आपकी देखा देखी आंखों को पोर और पोरों को आंखें बनाने का काम सीखती रही।'

सुबह होते ही राजा अपनी बेटी को ढूंढ़ते हुए कबीर की झोंपड़ी में आया कबीर को अपनी पुत्री भेंट के रूप में देने की पेशकश करने लगा। कबीर फिर भी अड़ा रहा और बोला 'ऐसी भेंट का तो सपना ही बुरा। मैं तो शादी ब्याह के लफड़े में ही नहीं पड़ना चाहता। और इस लफड़े के साथ राज्य का दहेज! क्या मुझे आप इतना अबूझ समझते हैं कि आपके वमन को मैं प्रसाद की तरह ग्रहण करूंगा?' सुनते ही राजा को प्रचंड क्रोध आया और उसने कबीर को जान से मारने का आदेश दे दिया। लेकिन फिर तुरंत ही उसे अपनी बेटी की पसंद की भी याद आई। इसलिए उसने अपना आदेश वापस ले लिया।

इधर कबीर के भीतर भी राजकुमारी के प्रति एक आकर्षण जाग चुका था इसलिए वह कहता है कि 'अगर नर मादा की हैसियत से, जहां तक एक दूसरे का मन चाहे राजकुमारी मेरा साथ करने को तैयार हो तो मेरी मनाही नहीं है।' स्त्री-पुरुष के संबंध का यह नया रूप बंगाल में बाउल लोगों के बीच प्रचलन में है। बाउल लोग विवाह बंधन में नहीं बंधते, वरन बाउल स्त्री-पुरुष जब तक उनकी आपसी इच्छा हो एक दूसरे के साथ रहते हैं। स्त्री-पुरुष संबंध का यह अत्यंत लोकतांत्रिक रूप इस कहानी के पात्र कबीर के मुंह से बोल उठता है।

राजकुमारी जब कबीर से पूछती है कि उसे अपनी कारीगरी की धज्जी उड़ाये जाते हुए देखकर गुस्सा नहीं आया तो कबीर कहता है 'एक आदमी के क्रोध से कुछ नहीं हो सकता। वो तो खुदकुशी के समान है। जिस दिन मेरे क्रोध की छूत जन जन के ह्रदय में खुदबुदाएगी उस दिन इंसानों की दुनिया में न तो कोई राजा होगा, न कोई रंक। न कोई उंच होगा, न नीच। न सांच होगा, न झूठ। न पाप होगा, न पुण्य। न धर्म होगा, न अधर्म। न कोई अमीर होगा और न कोई गरीब। न कहीं मंदिर होगा और न कहीं मस्जिद। उस दिन न मजहब बचेगा और न जाति।'

11.7 अन्य कथाओं से तुलना

कहानीकार भले ही एक सपने के रूप में इस बात को कबीर के मुंह से कहलवाता है लेकिन कहीं न कहीं लोककथा के भीतर तमाम किस्म के आधुनिक संदर्भ, मंतव्य और उद्देश्य ठूंस देने की कथाकार की यह बेचैनी कहानी पर अतिरिक्त रूप से बोझ डालती है और पाठक यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि कहानीकार कबीर के मिथक की कहीं बढ़ा चढ़ाकर व्याख्या तो नहीं कर रहा।

हिंदी में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी तरह की कथा के आधार पर 'अनामदास का पोथा' नामक उपन्यास लिखा। 'अनामदास का पोथा' मूलतः छांदोग्य उपनिषद के चौथे अध्याय की कथा का पल्लवन है जिसमें रैक्व नामक ऋषि को जानश्रुति नामक राजा अपनी कन्या प्रदान करते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास से इस कहानी की तुलना करने पर हमें कुछ रोचक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। एक तो यह कि द्विवेदी जी उपनिषद अर्थात शास्त्र परंपरा से प्राप्त इसी तरह की एक कहानी रचते हैं और विजयदान देथा वैसी ही कहानी लोक परंपरा से प्राप्त करते हैं। तो हमारे मन में यह धारणा पैदा होना स्वाभाविक है कि लोक और शास्त्र के बीच कोई शत्रुतापूर्ण संबंध नहीं रहा है बल्कि लोक से शास्त्र

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

और शास्त्र से लोक में अनेक मिथकों, कथाओं और धारणाओं की आवाजाही सहज ही होती रही है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास में भी रैक्व ऋषि के रूप में हमें एक अबोध शिशुवत् तत्वज्ञानी के सामने राजा का समर्पण दिखाई पड़ता है और इस समर्पण के रूप में राजा अपनी बेटी का हाथ ऋषि के हाथ में दे देता है। यह कथा ऋषि और राजा के जीवन मूल्यों के टकराव में राजा पर ऋषि की विजय की लोक इच्छा को व्यक्त करती है।

इसी से मिलती जुलती एक कथा हाल ही में उर्दू में प्रकाशित शम्सुर्रहमान फारुखी के उपन्यास 'कई चांद से सरे आसमां' में भी आई है। इस उपन्यास में राजस्थान का एक चितेरा अर्थात चित्रकार एक तस्वीर बनाता है जो महारावल की पुत्री की तस्वीर जैसी है। महारावल अपनी पुत्री के साथ चितेरे की कुटिया पर आते हैं और उनकी जिस लड़की का मुंह भी किसी ने नहीं देखा था उसकी तस्वीर बनानेवाले उस चितेरे का घर और गांव उजाड़ दिया जाता है। साथ ही महारावल अपनी पुत्री का गला काट देते हैं। आश्चर्यजनक बात यह है कि शम्सुर्रहमान फारुकी के उपन्यास और विजयदान देथा की इस कहानी की कथा भूमि राजस्थान ही है। शायद राजस्थान का रेगिस्तानी धूसर परिवेश वहा के लोगों में चटख रंगों के प्रति एक तरह का आकर्षण पैदा करता है। आप संचार माध्यमों और अपनी आंखों से भी राजस्थानी घाघरे और चुनरी में रंगों की छटा को देख सकते हैं। शायद इसीलिए चित्रकारों की यह कथात्मक उपस्थिति बड़े पैमाने पर राजस्थान में है। 'बनी ठनी' के चित्र राजस्थानी कलम की महानता का बखान करते हैं।

11-8 dgkuh e: mBk, x, loky

यह कहानी हमारे सामने बराबरी पर आधारित एक मानव समाज की कल्पना तो रखती ही है स्त्री पुरुष संबंध में भी दोनों की बराबरी और आपसी सहमति का मानदंड भी प्रस्तुत करती है।

धर्म के प्रश्न पर इस कहानी के पात्र कबीर की उलटबांसी भगवान के सामने इंसान की औकात को प्रतिष्ठित करती है। कबीर कहता है 'आत्मा, परमात्मा, भाग्य और धर्म से बड़ा जाल इंसान के हाथों न तो रचा गया और न रचा जाएगा। अक्ल की खोपड़ी नवाकर, जिंदा इंसान पत्थर की मूर्तियों को पूजता है इससे घिनौनी बात और क्या होगी?' एक आदर्श सा प्रस्तुत करते हुए कबीर कहता है 'मेरी न कोई जाति है, न मेरा कोई धर्म है और न मेरा कोई देश। इंसान के लिए यह कितनी शर्म की बात है कि धर्म और पंथों के बहाने मरे हुए औतार अभी तक जिंदा इंसानों पर शासन कर रहे हैं।'

राजा जब अपनी बेटी को कबीर के लिए प्रस्तुत करते हैं तो उनके स्वर में पुत्री को संपत्ति समझने का दंभ भरा हुआ है। वे कहते हैं' मैं तुझे ऐसी चीज भेंट करने के लिए आया हूं जिसका सपना भी तेरे लिए नामुमकिन है। पुत्री को भेंट और चीज समझना ही राजा की पितृसत्ताक मान्यता को स्पष्ट करते हैं। अपने इसी सोच की पुष्टि करते हुए वे फिर कहते हैं 'इंद्र भगवान का भी मन डोल जाए जैसी भेंट। बताऊं, राजकुमारी के हथलेवे में समूचे राज्य का दहेज!' साफ है कि उनके लिए संपत्ति के यही सर्वोच्च शिखर थे किंतु उनका यह अहंकार पानी पानी हो जाता है जब कबीर कहता है कि 'अगर सत्ता का सुख ही सबसे बड़ा सुख है तो आप उसे छोड़ते ही क्यों हैं?' यहां हमें जयशंकर प्रसाद द्वारा सत्ता सुख को मादक किंतु सारहीन बताने की बात याद करनी चाहिए। असल में साहित्य इसी तरह के प्रतीकों और संकेतों के जरिये सभ्यता में आई बुनियादी उलट पलट का प्रतिवाद करते हैं यानी वे इस बात पर अपना विरोध दर्ज कराते हैं कि कोई मनुष्य चाहे वह राजा ही क्यों न हो अपने आपको मनुष्य से अधिक क्यों समझने लगता है? इसी तरह देथाजी इस

गड़बड़ी पर भी अपना विरोध दर्ज कराते हैं कि समाज में मनुष्यों के गुण से अधिक महत्व उनकी संपत्ति और पद को प्राप्त हो जाता है।

प्राचीन काल से ही धार्मिक कलेवर में जनता की शासन के विरोध की आकांक्षा व्यक्त होती आई है और तकरीबन हमेशा ही उसने ईश्वर के सामने सभी मनुष्यों की बराबरी के संदेश को बार बार अपना हथियार बनाया है। भारत में भक्ति आंदोलन धार्मिक आवरण में ऐसा ही एक जनविद्रोह था जिसके पुरस्कर्त्ता के बतौर कबीर को माना जाता है। कबीर की संपूर्ण आध्यात्मिकता के भीतर भी यदि मनुष्य की समानता का संदेश हिंदी साहित्य के विद्वानों ने लक्षित किया तो यह अकारण नहीं था।

आधुनिक काल से पहले धार्मिक कलेवर में होनेवाले इन विद्रोहों में किसी बिचौलिये को नकारकर ईश्वर के साथ सीधे संबंध बनाने के भक्त के अधिकार का उद्घोष किया गया। विजयदान देथा ने इस कहानी के नायक का नाम कबीर अनायास नहीं रखा है।

11-9 eukHkkoka dk fp=.k

कहानी में मनोभावों के तीव्र उतार चढ़ाव का वर्णन थोड़ा अविश्वसनीय होते हुए भी कहानी के अपने सत्य के बतौर निश्चय ही औचित्यपूर्ण है। कहानी की शुरुआत में कबीर के गांव में ही अनायास पहुंच जाने पर राजकुमारी का उच्छल उत्साह दिखाई पड़ता है। राजकुमारी राजा की इकलौती बेटी थी। इकलौती बेटी के प्रति पिता के प्यार के नाते राजा की विवशता भी हमें अनेक बार दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए, जब वह कहानी के अंत में कबीर को कत्ल करने का आदेश देता है तो तुरंत ही कहता है 'खबरदार मैंने आदेश दिया तो क्या हुआ तुम्हें तो सोचना था? कबीर के चीरा लगने से ही मेरी लाडली बेटी कितना तड़पेगी! टपना काला मुंह करो यहां से। आइंदा भी ऐसा अंट शंट आदेश करूं तो कान मत देना।' दूसरी तरफ हमें गांव के ठाकुर की धूर्तता भी दिखाई पड़ती है। वह कबीर से चिढ़ा हुआ था इसलिए निरंतर वह कबीर के विरुद्ध राजा को भड़काता रहता है। राजकुमारी की चतुराई (वाक् चातुर्य) भी हमें कदम-कदम पर दिखाई पड़ती रहती है जब ठाकुर के भड़काने पर राजा गुस्सा हो जाता है तो राजकुमारी चतुराईपूर्वक उसके गुस्से को ठंडा कर देती है। इसी तरह बाद में भी राजा जब कबीर की कालीनें खरीदनें की जिद कर लेता है और कबीर के मना करने पर जब ठाकुर राजा को भड़काते हुए कहता है 'तेरे इन नाचीज चिथड़ों की खातिर तीन लोक के नाथ को दर दर का भिखारी बनाना चाहता है?' तो राजकुमारी बात संभालने के लिए ठाकुर की ओर घूमकर कहती है 'अपनी हलक की बात नाहक इसके मुंह में क्यों ठूंसते हो? इसने ऐसा तो नहीं कहा?' तब तो बात संभल गई। लेकिन बाद में राजा के आदेश पर जब उसके सिपाही तलवारें चमकाते कबीर की ओर लपके तो फिर राजकुमारी उनके सामने आकर कहती है 'खबरदार, कबीर को खरोंच भी आई तो मैं जिंदा जल मरूंगी!' परिस्थिति को बिगड़ता हुआ देखकर तत्काल निर्णय लेना और अपने प्रति पिता के प्रेम का महत्व समझकर कबीर को बचा लेने की उसकी युक्ति राजकुमारी की चतुराई का प्रमाण है।

राजकुमारी की इच्छा और कबीर के हठ के बीच में फंसा हुआ राजा बेबस होकर कहता है 'यह अपनी कारीगरी बेचता नहीं, भेंट करता नहीं, फिर और क्या करता तू ही बता।' राजकुमारी चतुराई से काम लेते हुए कहती है 'मुझसे पूछते तो बताती। पर अब तो पूछने की राह ही नहीं बची। इससे तो मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालते तो बेहतर था।' राजकुमारी की इस भाषा के सामने राजा नम्र हो जाते हैं।

कबीर के व्यक्तित्व में एक सच्चे कलाकार के स्वाभिमान की झलक मिलती है। वह न सिर्फ एक आजाद तबीयत कलाकार है बल्कि मनुष्य को मनुष्य समझने वाला एक विचारक भी है। कबीर के इस साहस के सामने राजा पाठक की नजर में दयनीय हो जाता है और अंततः एक मनुष्य की तरह कबीर से बोलने लगता है। कबीर राजा के आर पार देखते हुए कहता है 'अभी आपका मन गंदला नहीं हुआ है। मुझे उसके आर पार दिख रहा है।' इसी तरह का एक प्रसंग एक रूसी उपन्यास 'मास्टर और मारग्रीटा' में आता है जिसमें ईसा मसीह दंड देनेवाले न्यायाधीश की आत्मा के आर पार देखते हैं और उसे एक दयनीय मनुष्य बना देते हैं।

11-10 ukVdh;rk

विजयदान देथा की कहानी 'दूजौ कबीर' की एक बड़ी विशेषता उसकी नाटकीयता है। बहुत ही कम पात्रों की उपस्थिति में भावनाओं का उतार चढ़ाव और संवादों की प्रचुरता इसमें नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करते हैं और कहानी पाठक के सामने मंच पर खेले जा रहे नाटक जैसा दृश्य प्रस्तुत करती है। पूरी कहानी एक ही घटना स्थल पर घटित होती है और इस नाते इसमें नाटकीय अन्विति भी है। यहां तक कि हम यदि विचार करें तो केवल संवादों के होने, वस्तुओं की बहुत कम मौजूदगी और समय का अत्यंत संक्षिप्त होना इस कहानी को मंचन हेतु आदर्श कहानी बनाते हैं। यहां तक कि कहानीकार ने जिस तरह पात्रों के वस्त्रों वेशभूषा आदि का विवरण दिया है तो उससे लगता है कि कहानीकार के मन में कहीं न कहीं इस कहानी की मंचीयता की आकांक्षा भी रही होगी।

11-11 Hkk"kk 'kSyh

विजयदान देथा की इस कहानी में राजस्थानी के अपने मुहावरे मूल रूप से आये हैं। कहानी की भाषा में लोक अभिव्यक्ति के अनेक रूप तो हैं ही जनता में प्रचलित आम फहम भाषा भी इस कहानी की भाषा है। उदाहरण के लिए 'तेरा यह सांच हुकूमत के दबदबे से भी बड़ा है' में सांच में हमें मध्यकालीन लोकभाषा की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है तो हुकूमत उर्दू से आया है और दबदबा ठेठ देहाती मुहावरा है। इस तरह विजयदान देथा की यह कहानी राजा के माध्यम से राजसत्ता और कबीर के माध्यम से एक सामान्य मनुष्य के मूल्यों की टकराहट हमारे सामने पेश करती है। यह कहानी राजा और उसकी बेटी के परस्पर बातचीत के जरिये मनोभावों के उत्कट घात प्रतिघात को भी सामने ले आती है। जनता के मूल्यों की विजय की आकांक्षा जो लोक चेतना में दबी हुई है उसे यह कहानी एक पौराणिक समय में पूरा होते हुए दिखाती है।

11-12 lkjka'k

इस तरह विजयदान देथा की यह कहानी राजा के माध्यम से राजसत्ता और कबीर के माध्यम से एक सामान्य मनुष्य के मूल्यों की टकराहट हमारे सामने पेश करती है। यह कहानी राजा और उसकी बेटी के परस्पर बातचीत के जरिये मनोभावों के उत्कट घात प्रतिघात को भी सामने ले आती है। जनता के मूल्यों की विजय की आकांक्षा जो लोक चेतना में दबी हुई है उसे यह कहानी एक पौराणिक समय में पूरा होते हुए दिखाती है।

11-13 vH;kl

1) ‘दूजौ कबीर’ कहानी की मूल संवेदना को समझाइए।
2) ‘दूजौ कबीर’ कहानी में किन सवालों को उठाया गया है, प्रकाश डालिए।
3) ‘दूजौ कबीर’ कहानी के माध्यम से राजगढ़ और फकीरी अद्वैत की टकराहट को स्पष्ट कीजिए।
4) ‘दूजौ कबीर’ कहानी की भाषा शैली और नाटकीयता पर विचार कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY